अमृत-कलश

संकलनकर्ता

दीनानाथ झुनझुनवाला

संकलनकर्ता

दीनानाथ झुनझुनवाला

श्री प्रहलादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केंद्र

वाराणसी

प्रकाशक :

श्री प्रहूलादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र

झुनझुनवाला भवन,

नाटी इमली, वाराणसी

सम्पादक :

डॉ० जितेन्द्र नाथ मिश्र

अध्यक्ष - हिन्दी विभाग

दयानन्द महाविद्यालय, वाराणसी

अक्षर-संरचना :

ज्योति कम्प्यूटर्स

जैतपुरा, वाराणसी

आवरण संरचना :

वाणी ग्राफिक्स

नई बस्ती, ईश्वरगंगी, वाराणसी

मुद्रक :

काबरा ऑफसेट

रवीन्द्रपुरी, वाराणसी

मूल्य : ५० रुपये

अनुक्रम

समर्पण

हमारे सम्पूर्ण परिवार के प्रेरणास्रोत

स्वर्गीय पूज्य प्रह्लादराय झुनझुनवाला जी को सादर समर्पित

जिनका सम्पूर्ण जीवन एक महान

कर्मयोगी का जीवन था।
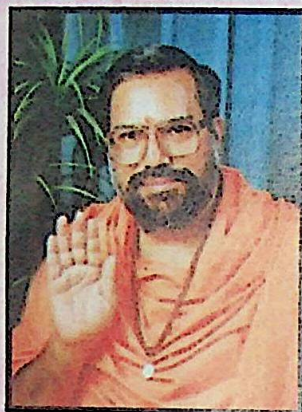
सद्गुरु स्वामी दिव्यानंद सरस्वती
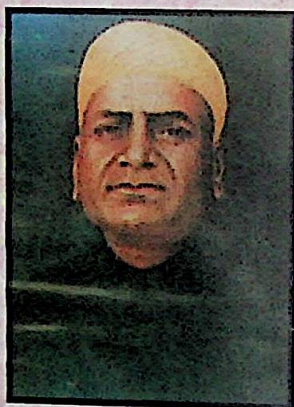
स्व० श्री हनुमान प्रसाद जी झुनझुनवाला
पिता श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला

श्रीमती डीडादेवी
माता श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला

स्व० श्रीमती गोमती देवी
धर्मपत्नी – स्व० प्रह्लादराय झुनझुनवाला

कर्मयोगी स्व० श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला

(संक्षिप्त परिचय)

श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र के प्रेरणास्रोत, मेरे पूज्य अग्रज स्व० प्रह्लादराय जी सच्चे अर्थों में एक कर्मयोगी थे। श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य पाठ तो बहुतेरे व्यक्ति करते हैं, बहुतों ने सम्पूर्ण गीता कण्ठस्थ कर रखी है किन्तु पूज्य भाई साहब ऐसे दुर्लभ व्यक्ति थे जिन्होंने इस महान ग्रंथ को कण्ठस्थ ही नहीं, अपितु हृदयंगम कर लिया था। उनके लिये श्रीमद्भगवद्गीता एक आचरण संहिता थी, जिसे चरितार्थ कर लेने के बाद तमाम शास्त्रों के जंगल में भटकने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वास्तव में उनका सम्पूर्ण जीवन गीता के कर्मयोग की एक खुली किताब है, जिसे पढ़ने वाला तमाम प्रकार के द्वन्द्वों और विषमताओं के बीच सर्वथा अविचलित भाव से निरंतर कर्मपथ पर अग्रसर रहने की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

भागलपुर (बिहार) के वामदेव नामक गांव में जन्मे भाई साहब हम सात भाइयों और दो बहनों में सबसे बड़े थे। हम सबकी समुचित शिक्षा-दीक्षा, सबकी सब प्रकार की आवश्यकताओं का ध्यान, सबके उपयुक्त कार्य व्यवसाय का दिशा निर्देश तथा सबके योगक्षेम की पूरी चिन्ता रखते तथा तमाम प्रकार के सांसारिक कर्तव्यों में अपने समय के एक-एक मिनट का सुदपयोग करते हुए भी वे सदैव निर्लिप्त एवं तटस्थ रहते थे। किसी से वे कोई अपेक्षा नहीं रखते थे। उनकी कोई अपेक्षा थी तो बस इतनी कि परिवार के सभी प्राणी सुसंस्कारित, कुल-परंम्पराओं के प्रति निष्ठावान तथा स्वधर्मपालन में तत्पर रहें। उनकी यह अपेक्षा केवल अपने परिवार के हमलोगों से नहीं, अपितु उन सभी बच्चों, युवकों और बूढ़ों से थी जो किसी प्रकार उनके प्रभाव क्षेत्र में आते थे। उनकी इस धर्मनिष्ठा का ही परिणाम था कि उनके द्वारा लगाये गये सभी पौधे पुष्पित-पल्लवित एवं फलीभूत होते रहे, किन्तु उन्होंने कभी स्वयं के लिए फल-कामना नहीं की।

बहुत छोटी अवस्था से ही वे गीता के भक्त थे। १४-१५ की अवस्था

तक उन्हें सम्पूर्ण गीता कंठस्थ थी। वे सीधे ही नहीं, उल्टे क्रम से भी गीता के श्लोक पुस्तक देखे बिना सुना सकते थे। कम उम्र में गीता कंठाग्र होने के कारण उन्हें बचपन में ही स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था। कलकत्ते में पूज्य नाना जी श्री भोलाराम टीबड़ेवाला के यहां रहते हुए गीताप्रेस के संस्थापक पूज्य श्री जयदयाल गोयनका तथा बाद में पूज्य भाईजी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार और उनके माध्यम से अनेकानेक संत-महात्माओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो आध्यात्मिक जीवन में उनकी पैठ और गहरी हो गई। जीवन के उत्तरार्द्ध में धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने के बाद तो वे एक सच्चे गृहस्थ संत की भाँति सम्पूर्णतः आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगे।

इस सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवनयात्रा के दौरान कभी अपने सांसारिक कर्तव्यों एवं दायित्वों से वे क्षण भर के लिए भी उदासीन या विमुख नहीं दिखलाई पड़े। आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुखता उन्हें लौकिक कर्तव्यों के प्रति और भी अधिक जागरूक बनाती थी। एक प्रकार से देखा जाय तो अध्यात्म ने उनकी लोकचेतना को विस्तृत कर दिया। भागलपुर, ऋषिकेश तथा वाराणसी आदि विभिन्न स्थानों में संत समागम तथा विभिन्न धार्मिक आयोजनों में महत्वपूर्ण पहल के साथ ही उन्होंने भागलपुर में जनहिताय एक प्रशस्त सत्संग भवन, गंगा तट पर पिताजी की स्मृति में हनुमान घाट तथा घाट के ऊपर शिव मन्दिर का निर्माण कराया। गीता तथा रामायण के संस्कार बच्चों में विकसित हों, इस उद्देश्य से उन्होंने 'हनुमान आदर्श विद्यालय की भी स्थापना की। इसी प्रकार वाराणसी में गोदौलिया के समीप एक भवन उन्होंने इसी उद्देश्य से क्रय किया जिसका ट्रस्ट बनाकर उन्होंने यह सुनिश्चित कर दिया कि उससे प्राप्त आय का सदुपयोग धार्मिक तथा जनसेवा से सम्बन्धित कार्यों के लिए ही किया जाएगा।

भाई श्री प्रहलादरायजी निःसन्तान थे। वे उम्र में मुझसे बीस वर्ष बड़े थे और मुझे पुत्रवत् स्नेह देते थे। १६ वर्ष की अवस्था में वैदिक रीति से उन्होंने मुझे गोद भी ले लिया। अतः मैं अपना यह पुनीत कर्तव्य मानता

मानता हूँ कि जिन लक्ष्यों के लिए उनका जीवन समर्पित था, उनके प्रचार-प्रसार एवं कार्यान्वयन की दिशा में यथाशक्ति प्रयास करूं। इस कर्तव्य-भावना से ही श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना की गई जिसके तत्वावधान में संगोष्ठियों, विद्वानों के प्रवचन, तथा छात्र-छात्राओं में गीता के प्रति रुचि विकसित करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार की प्रतियोगिताओं के आयोजन किये जाते हैं। इसी श्रृंखला में यह पुस्तक भी प्रकाशित की जा रही है जो उनके चरणों में सादर समर्पित है। संतों, महात्माओं तथा विद्वानों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी और उनका उपदेशामृत ग्रहण करते वे तृप्त नहीं होते थे। अनेकानेक महापुरुषों की सूक्तियां उन्हें कंठस्थ थीं और इन्हीं सूक्तियों के माध्यम से उनका अपना जीवन-दर्शन भी अभिव्यक्त होता था। उनके द्वारा विकसित संस्कारों के फलस्वरूप मैं भी संतों के चरणों में बैठने तथा उनकी अमृतमयी वाणी का रस ग्रहण करने का अवसर निकालता रहता हूँ। इस प्रकार की प्रकाशित सामग्री का यथासमय रसास्वाद करते रहने की आदत भी मैंने विकसित की है। पढ़ते-सुनते जो बात अच्छी लगती है, उसे डायरी पर अंकित कर लेता हूँ। मुझे विश्वास है कि इन वाणियों में पूज्य भाई साहब का जीवन दर्शन निहित है। तथा इनका प्रकाशन उनके विचारों के प्रचार-प्रसार का सबसे प्रभावशाली माध्यम हो सकता है। अस्तु, यह पुस्तक उनको समर्पित करते हुए यही निवेदन करता हूँ-"तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर"।

बात जब भाई श्री प्रह्लादराय जी के जीवन-दर्शन तथा उनके विचारों की आती है तो उनके सान्निध्य में देखी-सुनी गई कई बातें सामने आ जाती हैं जिनका उल्लेख करना इस दृष्टि से आवश्यक है कि इनसे मैंने बहुत कुछ पाया है तथा इन पंक्तियों को पढ़ने वाले मेरे जैसे बहुत से दूसरे लोग भी इनसे सहज ही लाभान्वित हो सकते हैं। शैशव काल से लेकर युवावस्था तक उनके जीवन से जो कुछ भी मैं सीख पाया, वह मेरे जीवन का प्रमुख सम्बल रहा है। उनसे प्राप्त कुछ जीवन सूत्रों की चर्चा इसी दृष्टि से मैं आवश्यक मानता हूँ।

भाई साहब के जीवन-दर्शन का पहला सूत्र है- कर्मनिष्ठा। "कर्म ही पूजा है" इस भाव से जो भी कार्य हाथ में लिया जाय, उसका पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ संपादन किया जाय। उनकी दृष्टि में कोई काम छोटा या बड़ा नहीं था। कर्ता की संकल्पशक्ति, दृढ़ता, निष्ठा, तथा भावना कार्य को गुरुता प्रदान करती है। पूजा जैसे पवित्र भाव के साथ पूरे मनोयोग से हम कार्य में प्रवृत्त हों तो सफलता के लिए हमें प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। उनका दृढ़ मत था कि संकल्प शक्ति ही सफलता का मूलमंत्र है।

इसके लिए ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास को भी वे आवश्यक मानते थे। अपने पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा रखते हुए भी ईश्वर निष्ठा आवश्यक है। उनके अनुसार ईश्वर-चिन्तन मनुष्य को अकर्मण्य अथवा आलसी नहीं होने देता। यह मनुष्य को अपने भीतर निहित अधिकतम ऊर्जा के साक्षात्कार का अवसर तथा प्रतिकूलताओं के बीच संघर्षरत रहने की नित्य नवीन जीवन शक्ति प्रदान करता है। अतः आस्तिकता का कोई विकल्प नहीं है। आस्तिक व्यक्ति ही अपना तथा अपने समाज का हित कर सकता है।

इसी विचार से पूज्य श्री प्रह्लादराय जी परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को जहां पुरुषार्थ और उद्यम के लिए प्रेरित करते थे, वहीं उनमें कीर्तन-भजन, पाठ-पूजा, सत्संग तथा ईश्वरनिष्ठा का संस्कार भी जगाते थे। सूर्योदय के पूर्व उठना, नियमित स्नानध्यान, पूजनवंदन तथा आहार-विहार की सात्विकता पर वे पूरा बल देते थे। वे सिनेमा तथा सस्ते मनोरंजन के दूसरे साधनों से बचने की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे क्योंकि इनसे शक्ति का अपव्यय होता है। उन्होंने स्वयं जीवन पर्यन्त कभी सिनेमा नहीं देखा। चाय-पान या अन्य किसी प्रकार का व्यसन भी उन्हें कभी नहीं हुआ। उनका दृढ़ मत था कि व्यसन चाहे कैसा भी हो, मनुष्य की कार्यक्षमता को घटाता ही है। उनके सात्विक एवं नियमशील जीवन तथा आचार-विचार का प्रभाव न केवल परिवार के हम लोगों पर अपितु किसी भी प्रकार उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों पर पड़े बिना नहीं रहता था।

आचरण एवं व्यवहार की सात्विकता के साथ ही वे कुल-परंपराओं, मर्यादाओं तथा शास्त्रविहित संस्कारों के पालन पर भी बल देते थे। वे मानते थे कि इनके आचरण द्वारा मनुष्य अपने मूल से जुड़ता है तथा इनका प्रभाव उसके आचरण एवं विचारों पर पड़ता है। इसी विचार से वे इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि परिवार के सभी बच्चों के शास्त्रोक्त संस्कार ठीक समय पर विधि-विधान के साथ सम्पन्न कराये जायं। इसका एक प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आग्रहपूर्वक हम सभी भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार यथासमय सम्पन्न कराया था।

वे नियम के बड़े पक्के थे और ऐसे ही लोगों को पसन्द करते थे। गंगा स्नान, दोनों समय संध्या-वन्दन, गीता पाठ, गायत्री जप तथा गो सेवा आदि उनकी अपनी दिनचर्या के अनिवार्य अंग थे। विषम से विषम परिस्थितियों में भी वे इन नियमों को छोड़ना नहीं चाहते थे। इसीलिए काशी, प्रयाग, ऋषिकेश आदि ऐसी जगहों पर ही वे जाते थे, जहां गंगा सुलभ हो। गंगा स्नान संभव न हो तो उनका मन उचटा सा रहता था। इसी प्रकार संध्यावंदन और गीता-पाठ में प्रमाद उन्हें सह्य नहीं था। एक ही अध्याय सही, किन्तु नियमित पाठ होना चाहिए। घर-बाहर के बच्चों को भी वे अपने साथ बैठाकर गीता-पाठ में सम्मिलित कर लेते थे। उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति अपने इन नियमों में अडिग रहता है वही कार्य-व्यवसाय के अन्य क्षेत्रों में भी अडिग रह सकता है।

उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति धर्म-कर्म, पूजा-पाठ तथा कुल परंपराओं का पालन करते हुए अपने कार्य व्यवसाय में निष्ठापूर्वक दत्तचित्त रहेगा उसे सफलता अपने आप मिलेगी। किन्तु सफलता के लिए बहुत आकुल और अधीर होना हमारे हित में नहीं है। काम करना हमारा धर्म है, फल तो ऊपर वाले के अधीन है। वह बहुत दयावान, बड़ा कृपालु है। वह सब कुछ देखता और जानता है। हमारी कर्मनिष्ठा एवं भावना के अनुसार हमें भी देगा ही, किन्तु हम उसे अपना अधिकार मानकर आकुल-व्याकुल क्यों हों ? सफलता नहीं मिली तो उसके लिए निराश भी क्यों हों ? निराश होने

से काम नहीं चलेगा। सफलता से वंचित हुए तो इसका अर्थ यह है कि कहीं न कहीं हमारी कार्यपद्धति में कुछ त्रुटि है। निराश होने के बजाय हम आस्थापूर्वक अपनी कार्यपद्धति को संशोधित एवं परिष्कृत करते हुए पुनः अपेक्षाकृत अधिक उत्साह के कार्यारम्भ करें, यही सफलता का रहस्य है।

उन्होंने स्वयं कई बार कई प्रकार के काम आंरभ किये। कई बार असफलताएं भी मिलीं, किन्तु कभी विचलित नहीं होते थे। असफलता उन्हें और भी अधिक उत्साहपूर्वक काम करने की प्रेरणा देती थी। एक बार अन्नपूर्णा मिल की भागीदारी में उन्होंने परिश्रमपूर्वक बनारस में सोडियम सिलिकेट का एक कारखाना स्थापित किया। शीघ्र ही भागीदारी टूट गई तो वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने तुरन्त ही एक दूसरी जमीन खरीद कर नये सिरे से कारखाने की स्थापना का उपक्रम किया और वे सफल हुए। कर्मठता, दृढ़ता और साहस के साथ ही निस्पृहता की शिक्षा भी उनके चरित्र से ली जा सकती है। अपने सभी भाइयों के उपयुक्त कार्य व्यवसाय की वे स्थापना करते, उसे जमाते और कार्यभार किसी भाई को सौंपकर अलग हो जाते थे। दूर से वे निरीक्षण करते रहते थे। समयानुसार दिशा-निर्देश देते और आवश्यक होने पर सहायता के लिए आगे भी आते थे किन्तु उससे पूरी तरह तटस्थ और निस्पृह रहते थे। सबके लिए स्नेह और लगाव का अगाध समुद्र उनके भीतर लहराता रहता था, फिर भी वे निर्लिप्त रहने का प्रयत्न करते थे और इस प्रयत्न में वे बहुधा सफल होते थे।

इस प्रकार उनके महान व्यक्तित्व की बहुत सी विशेषताएं हैं, जो इस अवसर पर स्मरण आती हैं। भावावेश के कारण सबका अंकन संभव नहीं है। हो सकता, तो संभवतः एक पूरी पुस्तक ही तैयार हो जाती। अस्तु, उपर्युक्त शब्दों के माध्यम से उनका सादर स्मरण और वंदन करते हुए अपने श्रद्धासुमन उनके चरणों में अर्पित करना ही यथेष्ट मानता हूँ।

– दीनानाथ झुनझुनवाला

वाराणसी
दि० १६-४-६८

सद्गुरु स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी महाराज का आशीर्वचन

श्री दीनानाथ झुनझुनवाला मेरे प्रिय शिष्य एवं भक्त हैं। ईश्वर की बड़ी कृपा है कि उद्योग-व्यवसाय में अति व्यस्त रहते हुए भी सत्संग, कथा, धार्मिक आयोजनों तथा शास्त्र-चर्चा में इनकी बड़ी श्रद्धा रहती है। ये कथा-पुराण सुनते ही नहीं हैं, गुनते भी हैं और अवसर निकालकर नियमित रूप से धर्मग्रंथों का स्वाध्याय भी करते हैं। सत्संग और स्वाध्याय में जो बातें इन्हें रुचती हैं, उन्हें ये डायरी में अंकित करते जाते हैं। इस प्रकृति के कारण इनके पास लोकोपकारी विचारसूत्रों का एक उत्कृष्ट संग्रह है।

इसी संग्रह का एक अंश ये 'अमृत-कलश' के रूप में प्रकाशित करा कर रहे हैं, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है। कुछ दिन पूर्व वाराणसी-प्रवास एवं प्रवचन के क्रम में इनके साथ रहना हुआ था तो इन्होंने इस पुस्तक का प्रारूप मुझे दिखलाया था और मेरी सहमति से ही इसे 'अमृत-कलश' नाम की संज्ञा दी गई थी।

वस्तुतः इस पुस्तक में सन्त महात्माओं का वचनामृत ही सम्पूर्णतः संग्रहीत है और वर्तमान कठिन समय में इसकी बड़ी आवश्यकता है। यह पुस्तक नित्य अध्ययन-मनन के योग्य है तथा इससे निश्चय ही पाठकों में सद्भावना, सत्प्रेरणा, आस्था और विश्वास का संचार होगा। इसके अधिक से अधिक प्रचार एवं प्रसार का प्रयास होना चाहिए।

मेरी शुभकामना है कि श्री दीनानाथ जी सफलमनोरथ एवं दीर्घायु हों तथा परमात्मा इन्हें इसी प्रकार के कीर्तिदायक सत्कार्यों का निमित्त बनाता रहे।

दिव्यानंद सरस्वती

दिव्यधाम आश्रम
दीनानाथ कालोनी
पानीपत-१३२१०३ (हरियाणा)

शिवसंकल्प

समग्र विश्व आज भौतिक प्रगति की ओर बढ़ रहा है एवं भौतिक प्रगति को सब कुछ समझता है, परन्तु वहां पर एक ऐसा भूखण्ड है, जहां चिरकाल से ज्ञान और कर्म को साथ-साथ सम्मान दिया गया है, उसे आर्यावर्त या भारत कहते हैं। वैदिक ऋषि ऋचाओं में देवों की स्तुति करते हुए पृथ्वी, जल एवं वनस्पतियों को अनुकूल कराते हैं। यहां पर भगवान श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए निष्क्रिय को गतिशील बनाते हैं एवं अष्टादशपुराणों में सुहृत्सम्मत उपदेश द्वारा महर्षि व्यास परोपकार की बातें करके कर्म की रक्षा करते हैं। परवर्ती काल में भास, कालिदास, भवभूति एवं भर्तृहरि प्रभृति कवियों ने मानवीय सभ्यता, सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक झांकियों को प्रदर्शित करके इस धरातल में अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

इस देश में बौद्धिक यात्रा में कभी विराम या प्रश्नचिन्ह नहीं लगा है। विभिन्न वातावरण में भी सभी धाराओं के मनीषियों को मुक्त चिन्तन करने का अवसर मिला है। राम की वाणी के साथ रहीम की वाणी को भी लोग उतने ही आदर के साथ पढ़ते हैं। इतना ही नहीं-इस देश में ऐसे पुण्यस्थल हैं, जहां हिन्दू एवं मुस्लिम एक स्थान पर अपने-अपने आराध्य देवों की पूजा करते हैं। इस देश की संस्कृति के विषय में जितनी गम्भीरता के साथ चिन्तन करते हैं, उतना ही आनन्द मिलता है एवं नये-नये खोज सामने उभर करके आते हैं। अतः निसर्गसुन्दर सत्य को उद्घोषित करता हुआ कवि हृदय का यह पद्य यथार्थता को बताता है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

आदरणीय श्री दीनानाथ झुनझुनवाला जी के द्वारा विरचित ग्रन्थरत्न 'अमृत-कलश' सचमुच एक अमृत-कलश है जिसमें ज्ञान-मन्दाकिनी सतत प्रवाहित है। जिस तरह आकाशवाहिनी गंगा स्वर्ग से उतर कर गंगोत्री से गंगासागर तक अपनी यात्रा तय करके विभिन्न तीर्थ स्थानों की गरिमा बढ़ाती

हैं, ठीक उसी तरह यह 'अमृत-कलश' वेदवाणी से अपने अमृतत्व का सिंचन करके सभी ज्ञानपिपासु व्यक्तियों को एवं साधारण नागरिकों को अवगाहित कराता है। मैं विश्वास करता हूँ कि समाज के समस्त प्राणियों के लिए यह 'अमृत-कलश' निश्चित रूप से ज्ञानामृत को प्राप्त करायेगा। इसके साथ 'अमृत-कलश' के लिए मैं श्री झुनझुनवाला जी को साधुवाद देता हूँ एवं इस प्रकार नवीन चिन्तन के साथ नूतन सृष्टि हेतु प्रेरित करता हूँ।

कुलपति कार्यालय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी - २२१००२
दि० १८ अप्रैल १९९८ ई०

डॉ० मण्डन मिश्र
कुलपति

मनुष्य जीवन का एक ही उद्देश्य है 'अपना कल्याण करना'। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होना ही-'अपना कल्याण करना' अथवा 'भगवत् प्राप्ति करना' है। श्री मद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा कि जो भोग-और संग्रह में अत्यन्त आसक्त हैं उन पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। गीता-२/४४

अतः सांसारिक पदार्थों का संग्रह तो भगवत्-प्राप्ति में बाधक कहा जा सकता है, परन्तु दैवी सम्पत्ति से युक्त आध्यात्मिक सूक्तियों का संग्रह मनुष्य का कल्याण करने में सहायक होता है।

'अमृत-कलश' में मेरे चिरपरिचित श्री दीनानाथ जी ने महापुरुषों की वाणी और सद्ग्रन्थों की सूक्तियों का संग्रह प्रस्तुत कर अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है, जो मनुष्य-जीवन को ऊपर उठाने वाला है। आशा है इस संकलन का पठन-पाठन और मनन-चिन्तन मानव-मात्र के लिये कल्याणकारी होगा।

राधेश्याम खेमका
सम्पादक-कल्याण

आचार्य डॉ० हरिहर कृपालु त्रिपाठी
की शुभाशंसा

श्री दीनानाथ झुनझुनवाला द्वारा संकलित 'अमृत-कलश' मैंने देखा। श्रीमद्भागवत में वर्णित समुद्र-मंथन जैसे श्रमसाध्य एवं बौद्धिक तत्वों से ओत-प्रोत इस संकलन के विचारसूत्र जीवन के लिए परमोपयोगी एवं अमृततुल्य हैं जिनका पान कर मानव अमर हो सकता है अर्थात् अपने को जान सकता है।

कल्याणपथ के पथिक जब अपने को जान लेते हैं तो जीवन के प्रत्येक सोपान को सफलतापूर्वक पार करते हुए चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर परम शांति के अधिकारी होते हैं।

आज मानव तापत्रय से ग्रस्त है। वर्तमान विषम परिस्थितियों में 'अमृत-कलश' मार्गदर्शन कराता रहेगा। अनेक ग्रंथों, संतवाणियों एवं सत्संगों से सारसंग्रह करते हुए श्री दीनानाथ जी ने इस संकलन द्वारा अपनी प्रतिभा एवं वैदुष्य को भी प्रमाणित किया है।

विश्वास है, इस संग्रह द्वारा वे स्थायी कीर्ति एवं सुयश के अधिकारी होंगे।

हरिहर कृपालु त्रिपाठी

संस्कृत महाविद्यालय
कुरहंस, आजमगढ़
चैत्र पूर्णिमा २०५५ वि०

शुभाशंसा

सद्विचार ही सद्प्रवृत्ति की ओर उन्मुख करते हैं। इसलिए हमें सतत सद्विचारों को पढ़ना और चिन्तन करना चाहिये। बुरे विचारों को अपने अन्दर से बाहर निकाल फेंकने के लिए हमें भले विचारों की मदद लेनी चाहिये।

कुविचारों को सद्विचारों से काटते रहने का संग्राम जारी रखना चाहिये। सद्ग्रन्थों की, सन्त-वचनों की यही महिमा है कि अच्छे विचार हृदय में भर जाते हैं और बुरे विचारों को या तो ढकेल कर निकाल देते हैं या दबा देते हैं।

महापुरुष कहते हैं कि सात्विक विचार जहाँ से भी मिले, उन्हें ग्रहण करना चाहिये।

श्री दीनानाथ झुनझुनवाला सद्विचारों का 'अमृत-कलश' लेकर उपस्थित हुए हैं। इसमे वेद भगवान की वाणी से लेकर गीता, महाभारत, भागवत, रामचरित मानस, बुद्धवाणी, महावीर-वाणी, गांधी-वाणी, बाइबिल, कुरान एवं अनेक सन्तों के अमृत वचनों का संग्रह है। इस प्रकार यह ग्रन्थ 'सर्व धर्म समभाव' की भावना को व्यक्त करता है।

उद्योगपति भाई दीनानाथ सतत सत्कार्यों में निरत रहते हैं।

गोपाल लाल बर्मन
२३.४.९८

पंचवटी कम्पनी
भेलूपुर, वाराणसी

मेरे अनुज भाई दीनानाथ ने 'अमृत-कलश' में सन्तों, महात्माओं, विचारकों, और कवियों की वाणी का जो अद्भुत संग्रह किया है, वह बहुत ही सराहनीय है। व्यापार उद्योग के कार्यों में अत्यन्त व्यस्तता के बाद भी इस पवित्र अनुष्ठान, जो अत्यन्त श्रमसाध्य है, को पूर्ण करना उनकी जीवन-शैली और गहरे ज्ञान को दर्शाता है। उनके परिश्रम और उनके अद्भुत जीवट को देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता होती है।

यही आशा की जाती है कि भविष्य में भी लोकहित के अन्य कार्य ये इसी प्रकार करते रहेंगे। पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है।

शुभकामनाओं के साथ।

रामावतार झुनझुनवाला
१९.४.९८

जे०जे० पैकेजर्स प्रा०लि०
रामकटोरा, वाराणसी फोन - ३४३०५६

शुभाशंसा

आपका संकलन जहाँ तहाँ से देखा, पूरा देखना एवं मनन करना तो समय साध्य है। आपका प्रयास प्रशंसनीय है। मैं साधुवाद करता हूँ। क्रिया में न पूज्य है न पाप है, क्रिया के हेतु में ही सब है। जैसे एक कार्य दो व्यक्ति करते हैं, एक को फाँसी मिलती है, एक को आशीर्वाद, धन्यवाद मिलता है। एक व्यक्ति चाकू से वार कर एक आदमी मारता है तो उसे फाँसी मिलती है जबकि डॉक्टर चाकू से ८-१० इन्च का घाव करता है। वैसे ही एक सैनिक सैकड़ों की हत्या करता है, उसे अशोक चक्र मिलता है एवं एक आदमी को मारता है तो उसे दण्ड मिलता है। एक बात एकदम साफ है कि भगवान की सृष्टि में न दुख है, न सुख। सुख-दुख हमारे बनाये हुए संसार में है। उदाहरण के लिये जैसे मिट्टी भगवान की बनायी हुई है, उसमें दस फुट की खाई हो या पहाड़, हमें कुछ भी सुख-दुख नहीं होता है। पर उसी मिट्टी से हम कोई बर्तन बनाते हैं तो वह रहता है तो सुख मिलता है, टूटता है तो दुख।

हमें भक्ति के बहाव में प्रभु कार्य नहीं चुकना चाहिये। गंगा को भक्ति रूपा कहा गया है। जब गंगा तट के भीतर बहती है तो लाखों लोगों को अमृत पान कराती है एवं फसल भी पकाती है। वही गंगा जब तट छोड़ कर बहती है तो न जल पीने के काम आता है एवं खेती का भी विनाश हो जाता है।

आपकी पुस्तक देखकर विचार बहुत आये पर एक तो मैं पढ़ा लिखा व्यक्ति नहीं, दूसरे आपके साथ के कारण ही कुछ लिख पाया। यह पुस्तक प्रकाशित होने से बहुतों का फायदा होगा। मेरे निजी विचार से तो एक व्यक्ति के उद्वेग को भी शान्त करे तो प्रयास पूर्ण सफल एवं सुफल है। सिद्ध होना कोई खास बात नहीं, शुद्ध होना बड़ी बात है। हम पर, आप पर शुद्ध सन्तों की कृपा उतरे।

जासु नाम भव भेषज, हरण घोर त्रय सूल।
सोइ कृपालु मोहि तोहि पर राम रहैं अनुकूल।।

बाँस फाटक
वाराणसी,
दि० २१ अप्रैल १९९८ ई०

राम सुमिरन के साथ
आपका
दीनदयाल जालान

मेरे उद्गार

मेरा स्वधर्म उद्योग एवं व्यवसाय करना है। मेरे सभी बच्चे बड़े हो गये और उद्योग व्यवसाय के स्वयं संचालन में निपुण हो गये। मैंने सोचा कि अब उद्योग व्यवसाय का सम्पूर्ण कार्यभार उन्हीं के बलिष्ठ कंधों पर छोड़ दिया जाय। एतदर्थ तीनों बच्चों में उद्योग-व्यवसाय का वितरण कर दिया। मैंने उन्हें सलाह देने और उनके बताये कार्य को पूरा करना अपना उद्देश्य बनाया। सभी सामाजिक तथा अन्य सेवा-सत्संग कार्यों को करने एवं उनमें जाने का कार्यभार अपने ऊपर लिया। चूंकि अठारह घंटे व्यस्त रहना मेरा स्वभाव है, अतः समय जो बचा, उसे मैंने धार्मिक कार्यों एवं कथाओं को सुनने में लगाया। कथाओं के संचालन का कार्यभार जब-जब दिया गया, उसे पूरी ईमानदारी से मैंने पूरा किया। सभाओं में जिन अवसरों पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला, उसका भी भरपूर उपयोग किया। आकाशवाणी हो या दूरदर्शन, स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि में भी अनेक अवसरों पर अपने विचार रखने का सुअवसर मिला और उसका भी मैंने भरपूर उपयोग किया। कथाओं को जहां भी सुनता था, उनके सारांश मैं लिख लेता था और उन सूत्रों को दैनिक समाचार पत्र प्रमुखता से प्रकाशित करते थे। समाचार पत्रों में प्रकाशन ने मुझे अन्य विषयों पर लेख लिखने को भी प्रेरित किया और प्रायः ये लेख भी समाचार पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित होने लगे।

कथा के अनमोल वचन एवं प्रेरक प्रसंग छोटे-छोटे टुकड़ों में प्रकाशित होते थे। मेरे स्वजन एवं मित्र पाठकों ने मुझे प्रेरित किया कि इन संग्रहीत सूत्रों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करूं। पाठकों की प्रेरणा से ही सम्पूर्ण संग्रह का पुस्तक रूप में प्रकाशन संभव हो सका।

मेरे इस सत्कार्य में डॉ० जितेन्द्र नाथ मिश्र, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, दयानन्द डिग्री कालेज, वाराणसी का अतुलनीय सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने इस पुस्तक के बिखरे सूत्रों को क्रमबद्ध किया और इसे प्रकाशन योग्य बनाया। श्री चन्द्रदेव पाण्डेय जी, श्री राज किशोर शर्मा जी, अग्रज श्री राम अवतार

लिये मूल्यवान था। अपने सुपुत्र श्री सत्यनारायण झुनझुनवाला को प्रातः भ्रमण में संकलित सूत्रों के बारे में बताता था और उसकी भी इच्छा हुई कि इनका एक जगह संग्रह कर पुस्तक रूप में प्रकाशन कर दिया जाय। मेरे अन्य दो पुत्रों चि० महेश कुमार झुनझुनवाला एवं चि० विश्वनाथ झुनझुनवाला ने भी संकलित सामग्री को देख-सुनकर इसके पुस्तकाकार प्रकाशन का आग्रह किया । श्री शरद कुमार साधक जी हमारे हमेशा ही प्रेरणास्रोत रहे हैं। इसके प्रकाशन में उनका सहयोग भी मूल्यवान रहा है। मेरे परिवार के अन्य सभी सदस्य भी इसके प्रकाशन के लिए मुझे प्रेरित करते रहे और सभी का योगदान मैं स्वीकार करता हूँ।

एक एक सन्त एवं विद्वानों के सूत्र तो यत्र-तत्र मिल जाते हैं लेकिन विभिन्न सन्तों के अनमोल वचन एवं प्रेरक प्रसंग एक पुस्तक में देखने को हमें नहीं मिला। इस पुस्तक के माध्यम से यही सद्प्रयास करने की हमने चेष्टा की है। इस कार्य और उद्देश्य में कितना सफल हुआ यह तो सुधी एवं स्नेही पाठक ही बता पायेंगे। यह पुस्तक इस बात को ध्यान में रखकर संकलित की गई है कि बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री हो या पुरुष, किसी भी जाति सम्प्रदाय के हों, सभी के लिये उपयोगी हो। प्रत्येक परिवार में इसके पठन से तथा इसके सूत्रों को अपनाने से जीवन में सुख शान्ति आयेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। आजकल बडे बड़े धर्मग्रन्थों या लेखों को पढ़ना तथा समझना सम्भव नहीं हो पाता। अतः सार रूप में सूत्रबद्ध निचोड़ शीघ्र समझ में आ जाता है। सुधी पाठकगण इसे पढ़कर इसके गुण-दोष से मुझे अवगत करा सकेंगे तो मैं आगे के प्रकाशनों में सुधार कर सकूंगा।

अंत में मैं उन सभी महात्माओं, सन्तों विचारकों, कवियों, लेखकों और विद्वानों के चरणों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ जिनकी अमृतमयी वाणी से यह 'अमृत-कलश' परिपूर्ण हुआ है।

दीनानाथ झुनझुनवाला
संकलनकर्ता

झुनझुनवाला भवन
नाटी इमली, वाराणसी
दि० १८ अप्रैल १९९८ ई०

सम्पादकीय

'अमृत-कलश' का प्रकाशन श्री प्रह्लाद राय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र का जनकल्याणकारी प्रयास है। इस प्रयास में सहभागिता का मुझे अवसर मिला, इसे मैं ईश्वर की कृपा मानता हूँ।

इस संस्था के मंत्री श्री दीनानाथ झुनझुनवाला को अपने नगर के प्रतिष्ठित उद्योगपति तथा समाजसेवी के रूप में मैं जानता तो बहुत दिनों से था किन्तु पहचानने का अवसर इधर के ३-४ वर्षों में ही मिला है, जबकि स्वास्थ्य-संरक्षण की अपेक्षा से मुझे प्रातःकालीन भ्रमण का एक नियम बनाना पड़ा। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रातःकालीन भ्रमण का सिलसिला प्रारंभ हुआ तो अनायास ही इनके साथ कुछ क्षणों के सत्संग एवं वार्तालाप का भी नैतिक सुयोग बन गया।

परिचय क्रमशः घनिष्ठता में परिवर्तित हुआ और इस बीच मैंने पाया कि वे प्रमुख़ उद्योगपति, व्यवसायी तथा समाजसेवी ही नहीं हैं, अपितु एक सहृदय साहित्यप्रेमी और रचनाकार भी हैं। तरह-तरह के वैय्रयक्तिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों के बीच अति व्यस्त रहते हुए भी वे नियमित रूप से कुछ न कुछ पढ़ते-लिखते रहते हैं, यह देखकर मैं विस्मयविमुग्ध होता रहा हूँ। पत्र-पत्रिकाओं के लिए उनके द्वारा लिखित अथवा संकलित सामग्री की फाइल जब एक दिन देखने को मिली तो मेरी पहली प्रतिक्रिया थी कि इनके द्वारा तीन-चार अति उपयोगी पुस्तकें तैयार हो सकती हैं।

उक्त सामग्री का एक अंश ही संप्रति 'अमृत-कलश' के रूप में सर्वजनहिताय प्रकाशित हो रहा है और मेरी दृष्टि में यह इनके द्वारा प्रकाश्य पुस्तकों की श्रृंखला की पहली कड़ी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकों के द्वारा इस प्रयास की यथेष्ट सराहना होगी और अवशिष्ट सामग्री भी यथाशीघ्र पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

पुस्तक जब पाठकों के सामने है, तो इसके महत्व के विषय में अपनी ओर से बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मूल्यांकन का संपूर्ण अधिकार वस्तुतः पाठक-समुदाय में ही निहित होता है। पुस्तक की सम्पूर्ण

लिये मूल्यवान था। अपने सुपुत्र श्री सत्यनारायण झुनझुनवाला को प्रातः भ्रमण में संकलित सूत्रों के बारे में बताता था और उसकी भी इच्छा हुई कि इनका एक जगह संग्रह कर पुस्तक रूप में प्रकाशन कर दिया जाय। मेरे अन्य दो पुत्रों चि० महेश कुमार झुनझुनवाला एवं चि० विश्वनाथ झुनझुनवाला ने भी संकलित सामग्री को देख-सुनकर इसके पुस्तकाकार प्रकाशन का आग्रह किया। श्री शरद कुमार साधक जी हमारे हमेशा ही प्रेरणास्रोत रहे हैं। इसके प्रकाशन में उनका सहयोग भी मूल्यवान रहा है। मेरे परिवार के अन्य सभी सदस्य भी इसके प्रकाशन के लिए मुझे प्रेरित करते रहे और सभी का योगदान मैं स्वीकार करता हूँ।

एक एक सन्त एवं विद्वानों के सूत्र तो यत्र-तत्र मिल जाते हैं लेकिन विभिन्न सन्तों के अनमोल वचन एवं प्रेरक प्रसंग एक पुस्तक में देखने को हमें नहीं मिला। इस पुस्तक के माध्यम से यही सद्प्रयास करने की हमने चेष्टा की है। इस कार्य और उद्देश्य में कितना सफल हुआ यह तो सुधी एवं स्नेही पाठक ही बता पायेंगे। यह पुस्तक इस बात को ध्यान में रखकर संकलित की गई है कि बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री हो या पुरुष, किसी भी जाति सम्प्रदाय के हों, सभी के लिये उपयोगी हो। प्रत्येक परिवार में इसके पठन से तथा इसके सूत्रों को अपनाने से जीवन में सुख शान्ति आयेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। आजकल बडे बड़े धर्मग्रन्थों या लेखों को पढ़ना तथा समझना सम्भव नहीं हो पाता। अतः सार रूप में सूत्रबद्ध निचोड़ शीघ्र समझ में आ जाता है। सुधी पाठकगण इसे पढ़कर इसके गुण-दोष से मुझे अवगत करा सकेंगे तो मैं आगे के प्रकाशनों में सुधार कर सकूंगा।

अंत में मैं उन सभी महात्माओं, सन्तों विचारकों, कवियों, लेखकों और विद्वानों के चरणों में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ जिनकी अमृतमयी वाणी से यह 'अमृत-कलश' परिपूर्ण हुआ है।

दीनानाथ झुनझुनवाला
संकलनकर्ता

झुनझुनवाला भवन
नाटी इमली, वाराणसी
दि० १८ अप्रैल १९९८ ई०

सम्पादकीय

'अमृत-कलश' का प्रकाशन श्री प्रह्लाद राय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र का जनकल्याणकारी प्रयास है। इस प्रयास में सहभागिता का मुझे अवसर मिला, इसे मैं ईश्वर की कृपा मानता हूँ।

इस संस्था के मंत्री श्री दीनानाथ झुनझुनवाला को अपने नगर के प्रतिष्ठित उद्योगपति तथा समाजसेवी के रूप में मैं जानता तो बहुत दिनों से था किन्तु पहचानने का अवसर इधर के ३-४ वर्षों में ही मिला है, जबकि स्वास्थ्य-संरक्षण की अपेक्षा से मुझे प्रातःकालीन भ्रमण का एक नियम बनाना पड़ा। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रातःकालीन भ्रमण का सिलसिला प्रारंभ हुआ तो अनायास ही इनके साथ कुछ क्षणों के सत्संग एवं वार्तालाप का भी नैत्यिक सुयोग बन गया।

परिचय क्रमशः घनिष्ठता में परिवर्तित हुआ और इस बीच मैंने पाया कि वे प्रमुख उद्योगपति, व्यवसायी तथा समाजसेवी ही नहीं हैं, अपितु एक सहृदय साहित्यप्रेमी और रचनाकार भी हैं। तरह-तरह के वैयुयक्तिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों के बीच अति व्यस्त रहते हुए भी वे नियमित रूप से कुछ न कुछ पढ़ते-लिखते रहते हैं, यह देखकर मैं विस्मयविमुग्ध होता रहा हूँ। पत्र-पत्रिकाओं के लिए उनके द्वारा लिखित अथवा संकलित सामग्री की फाइल जब एक दिन देखने को मिली तो मेरी पहली प्रतिक्रिया थी कि इनके द्वारा तीन-चार अति उपयोगी पुस्तकें तैयार हो सकती हैं।

उक्त सामग्री का एक अंश ही संप्रति 'अमृत-कलश' के रूप में सर्वजनहिताय प्रकाशित हो रहा है और मेरी दृष्टि में यह इनके द्वारा प्रकाश्य पुस्तकों की श्रृंखला की पहली कड़ी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकों के द्वारा इस प्रयास की यथेष्ट सराहना होगी और अवशिष्ट सामग्री भी यथाशीघ्र पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

पुस्तक जब पाठकों के सामने है, तो इसके महत्व के विषय में अपनी ओर से बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मूल्यांकन का संपूर्ण अधिकार वस्तुतः पाठक-समुदाय में ही निहित होता है। पुस्तक की सम्पूर्ण

सामग्री सर्वथा निर्दोष एवं सर्वविध गुणकारी है। वर्तमान समय में जबकि आदमी चतुर्दिक् संशय तथा अंधकार से घिरा हुआ है, ज्ञानियों और संतों की वाणी ही उसके लिए मार्गदर्शक हो सकती है। इस दृष्टि से 'अमृत-कलश' जैसे संग्रहों का प्रकाशन इस समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

सब प्रकार से सबके लिए कल्याणकर वाणियों के इस संग्रह को मुद्रण की दृष्टि से भी निर्दोष एवं आकर्षक बनाने की पूरी चेष्टा की गई है। तथापि अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ अनदेखी रह गई हों, इस संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनके लिए अग्रिम क्षमायाचना करते हुए हम सुधी पाठकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि पुस्तक के सम्बन्ध में उनके सुझाव हमें प्राप्त हुए तो अगले संस्करण में इसे परिमार्जित, परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप प्रदान करते हुए हमें प्रसन्नता होगी।

के० ६७/१३५, ईश्वरगंगी, वाराणसी

जितेन्द्र नाथ मिश्र
सम्पादक

अमृत-कलश
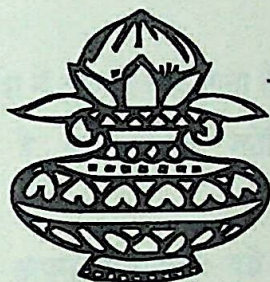
यह 'अमृत-कलश' सद्भावों और विचारों का,
ऋषियों - सन्तों के मार्मिक शुभ उद्गारों का,
घनघोर अँधेरे में प्रकाश का प्रखर पुंज,
दे शक्ति और सम्बल सबको संस्कारों का।

यह 'अमृत-कलश' सब विधि सबको गुणकारी है,
सब धर्मो का सारांश सदा हितकारी है,
इसको सप्रेम अपनायें, देखें यह कैसा
नवजीवनदायक संग्रह भव - भय - हारी है।

धर्म एक आदर्श जीवन शैली है, सुख से रहने की पावन पद्धति है, शान्ति प्राप्त करने का सुगम पथ है, अनुशासन में रहने की शिक्षा है एवं सर्वोपरि जनकल्याणकारी आचार-संहिता है।
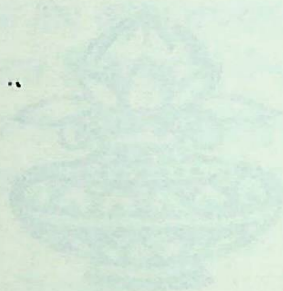
---

(१)

वेदवाणी

शिवसंकल्प

यत् जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तद् उ सुप्तस्य तथैव एति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिः एकं, तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४/१)

जो जाग्रत अवस्था में दूर-दूर तक जाता है तथा सुप्तावस्था में यथावत् अपने में लौट आता है, वह दूरगामी, ज्योतियों का ज्योति, मेरा मन शिवसंकल्प-युक्त हो।

येन कर्माणि अपसो मनीषिणः यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यद् अपूर्वं यक्षम् अन्तः प्रजानां, तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४/२)

जिसके द्वारा मनीषी यज्ञ में तथा शूरवीर युद्धादि में प्रवृत्त होते हैं तथा जो समस्त प्राणियों के भीतर अद्भुत अपूर्व है, वही मेरा मन शिव संकल्प युक्त हो।

यत् प्रज्ञानम् उत चेतो धृतिश्च, यत् ज्योतिः अन्तः अमृतं प्रजासु।
यस्मात् न ऋते किंचन कर्म क्रियते, तत् मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४/३)

जो ज्ञान का उत्तम साधन, चिन्तन एवं धैर्य सम्पन्न, समस्त प्राणियों के भीतर अमृतज्योतिस्वरूप है तथा जिसके बिना कोई कर्म सम्पन्न ही नहीं हो सकता, वह मेरा मन शिवसंकल्पयुक्त हो।

येन इदं भूतं भुवनं भविष्यत्, परिगृहीतम् अमृतेन सर्वम्।
येन यज्ञः तायते सप्त होता, तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४/४)

जिस अमर ज्योति (मन) ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान सबको परिगृहीत कर रखा है, जो सात होताओं वाला शरीरयज्ञ सम्पन्न करता है, वह मेरा मन शिवसंकल्प-युक्त हो। (यहाँ शरीरयज्ञ में प्रज्वलित आत्मा रूपी अग्नि में बाह्य विषयों की आहुति देने वाले दो नेत्र, दो कान, दो नासिकाछिद्र तथा एक जिह्वा ये सात होता संदर्भित हैं।)

यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन्, प्रतिष्ठिताः रथनाभौ इवाराः।
यस्मिन् चित्तम् सर्वम् ओतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
(यजु० ३४/५)

जिसमें ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद अर्थात् समस्त विद्याएँ उसी प्रकार केन्द्रित हैं, जैसे रथचक्र की धुरी में उसके सभी अरे केन्द्रित होते हैं तथा जिसमें प्राणियों का समस्त ज्ञान ओतप्रोत है, वह मेरा मन शिवसंकल्पयुक्त हो।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तकवयो वदन्ति।।
कठोपनिषद

उठो, जागो, सत्पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी जन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण एवं दुस्तर धार के समान बताते हैं।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जगत है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए इसे त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ, क्योंकि यह धन किसका है? किसी का नहीं।

(२)

गीतामृत

गीतासार

* क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है।
* जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है। जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चात्ताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल रहा है।
* तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते हो? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था, जो नाश हो गया? तुम कुछ लेकर नहीं आये, जो लिया, यहीं से लिया। जो दिया, यहीं पर दिया। जो लिया, इसी (भगवान) से लिया। जो दिया, इसी को दिया। खाली हाथ आये, खाली हाथ चले। जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा। तुम इसे अपना समझ कर मग्न हो रहे हो। बस यह प्रसन्नता ही तुम्हारे दुःखों का कारण है।
* परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो जीवन है। एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे ही क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया मन से हटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो।
* न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो। यह अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से बना है और इसी में मिल जायगा। परंतु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्या हो ?
* तुम अपने आपको भगवान के अर्पित करो, यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इसके सहारे को जानता है, वह भय, चिंता, शोक से सर्वदा मुक्त है।
* जो कुछ भी तू करता है, इसे भगवान के अर्पण करता चल। इसी से तू सदा जीवन्मुक्त का आनन्द अनुभव करेगा।

गीता में कर्म-भक्ति एवं ज्ञान

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

(श्रीमद्भगवद्गीता २/४७)

कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में किंचिन्मात्र नहीं। इसलिये कर्मफल को अपना हेतु (लक्ष्य) मत बनाओ, (साथ ही) अकर्म में भी मत फँसो अर्थात् फल की इच्छा से निर्लिप्त रहकर कर्म करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त संगः समाचर।।

(गीता ३/९)

कर्म ही यज्ञ (पूजा) है, इस भावना के अतिरिक्त दूसरी भावना (फलादि की भावना) से कर्म करने के कारण यह संसार कर्मबन्धन में फँसता है। अतः हे अर्जुन, संग (फल की आसक्ति) से मुक्त होकर कर्म करो।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा।।

(गीता ५/१०)

ईश्वर की पूजास्वरूप समर्पणभाव से कर्म कर रहे हैं, इस भावना के साथ जो आसक्तिरहित होकर कर्म करता है, वह संसार में रहते हुए सांसारिक दोषों से वैसे ही लिप्त नहीं होता, जैसे पानी में रहते हुए भी कमल का पत्ता पानी से लिप्त नहीं होता।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

(गीता ३/५)

प्राणी क्षणभर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। प्रकृतिजन्य गुणों के कारण सभी (प्रतिक्षण) कर्म करने के लिए विवश हैं।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ताऽस्यामुपयहन्यामिमाः प्रजाः।।

(गीता ३/२२, २४)

हे अर्जुन, (मुझे ही देख लो) मेरे लिये तीनो लोकों में जो कुछ भी है, सब प्राप्त है (कुछ अप्राप्त है ही नहीं) फिर भी मैं कर्म करता हूँ। यदि मैं कर्म न करूँ तो इस लोक का नाश हो जाय, (उस स्थिति में) मैं वर्णों की अव्यवस्था तथा प्रजाओं के नाश का कारण बन जाऊँगा।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

(गीता ३/३५)

(फल-कामना-रहित कर्म ही मनुष्य का धर्म है, यह स्थापित करने के बाद भगवान का कथन है कि) परधर्म का अत्यंत कुशलतापूर्वक संपादन करने की अपेक्षा स्वधर्म का कौशलरहित परिपालन भी कहीं अधिक श्रेयस्कर है। स्वधर्म के पालन में प्राण दे देना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता १८/४६)

जिस परमेश्वर से प्राणिमात्र की उत्पत्ति है तथा जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, स्वकर्म के माध्यम से उसी की पूजा करके मनुष्य सिद्धि (सफलता) प्राप्त कर सकता है।

भक्ति

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता ६/२७)

हे अर्जुन, तुम जो कुछ करते हो-खाते हो, यज्ञ करते हो, दान करते हो, तपस्या करते हो (अर्थात् जो कुछ भी तुम्हारे द्वारा किया जाता है, वह सब) मुझे अर्पित कर दो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।।

(गीता १८/६५-६६)

अपना मन मुझमें लगा, मेरे भक्त बनो, मेरे लिये यज्ञ करो, मुझे प्रणाम करो, तो तू मेरे पास आ ही जायगा और मेरा प्रिय होगा, यह मेरा सत्यवचन है।

दूसरे सभी धर्मों को छोड़कर एक मेरी ही शरण लो, चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शंक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।

(गीता ११/५३-५४)

हे अर्जुन, जैसा तुमने मुझे देखा है, वैसा न तो मैं वेदों द्वारा देखा जा सकता हूँ, न ही तपस्या, दान अथवा यज्ञ द्वारा। केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मुझे इस प्रकार जाना, देखा तथा तत्त्वतः मेरे भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ।।

(गीता ८/७)

इसलिये सभी कालों में मेरा स्मरण करो और लड़ो। अपना मन और बुद्धि मुझे अर्पित करके (समस्त कर्म करते हुए) तुम मुझे प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं।

ज्ञान

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

(गीता १३/१२)

आत्मज्ञान अथवा अध्यात्मज्ञान में नित्यत्व (अर्थात् सदैव एकभाव से संलग्न रहना) तथा सर्वसारांशभूत तत्त्वज्ञान का दर्शन (साक्षात्कार) ही ज्ञान कहा जाता है, उससे भिन्न जो कुछ है, वह अज्ञान है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

(गीता ४/३३)

हे अर्जुन, द्रव्यमय यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अधिक श्रेयस्कर है। (क्योंकि) ज्ञान में ही समस्त कर्मों की परिसमाप्ति हो जाती है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

(गीता ४/३७-३८)

जैसे दहकती हुई आग ईंधन को सहज ही भस्म कर देती है उसी प्रकार सभी कर्म ज्ञान की अग्नि में सहज ही जलकर भस्म हो जाते हैं। ज्ञान के समान पावनकारी कुछ नहीं है और वह ज्ञान योगसिद्ध व्यक्ति को स्वयमेव यथेष्ट समय पर अपने भीतर से ही प्राप्त हो जाता है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

(गीता ५/१८)

पंडित (ज्ञानी) विद्या-विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल (अर्थात् प्राणिमात्र) में समदृष्टि रखते हैं।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।
समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

(गीता १३/२७-२८)

सभी प्राणियों के भीतर समान रूप से एक ही परमात्मा स्थित है। विनाशी शरीरों के भीतर जो एक अविनाशी आत्मा को देखता है, वस्तुतः वही (सत्य) देखता है।

एक ही परमात्मा समभाव से सर्वत्र स्थित है, ऐसा देखते हुए जो आत्मा द्वारा आत्मा को नहीं मारता अर्थात् किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, वही परम गति को प्राप्त करता है।

जिसने अपने आपको जीत लिया, वह स्वयं अपना बंधु है, परन्तु जो अपने आप को नहीं पहचानता वह स्वयं अपने साथ शत्रु के समान बैर करता है।

- श्रीमद्भगवद्गीता

गीतोपदेश

१. सांसारिक मोह के कारण ही मनुष्य "मैं क्या करूं और क्या नहीं करूँ"-इस दुविधा में फंसकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। अतः मोह या सुखासक्ति के वशीभूत नहीं होना चाहिये।

२. शरीर नाशवान् है और उसे जानने वाला शरीरी अविनाशी है-इस विवेक को महत्व देना और अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

३. निष्काम भावपूर्वक केवल दूसरों के हित के लिये अपने कर्तव्य का तत्परता से पालन करने मात्र से कल्याण हो जाता है।

४. कर्मबन्धन से छूटने के दो उपाय हैं – कर्मों के तत्त्व को जानकर निःस्वार्थ भाव से कर्म करना और आत्मतत्त्व को अनुभव करना।

५. मनुष्य को अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर समभाव में स्थित होकर सुखी-दुःखी नहीं होना चाहिये।

६. किसी भी साधन से अन्तःकरण में समता आनी चाहिये। समता आये बिना मनुष्य सर्वथा निर्विकार नहीं हो सकता।

७. सब कुछ भगवान ही है--ऐसा स्वीकार कर लेना आत्मकल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

८. अन्तकालीन चिन्तन के अनुसार ही जीव की गति होती है। अतः मनुष्य को हरदम भगवान का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये, जिससे अन्तकाल में भगवान की स्मृति बनी रहे।

९. सभी मनुष्य भगवत्प्राप्ति के अधिकारी हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम सम्प्रदाय, देश, वेश आदि के क्यों न हों।

१०. संसार में जहाँ भी विलक्षणता, विशेषता, सुन्दरता, महत्ता, विद्वत्ता, बलवत्ता, आदि दीखे, उसको भगवान का ही तेज मानकर भगवान का ही चिन्तन करना चाहिये।

११. इस जगत को भगवान का ही स्वरूप मानकर मनुष्य भगवान के विराट् रूप के दर्शन कर सकता है।

१२. जो प्राणी शरीर-इन्द्रियां-मन-बुद्धि सहित अपने आपको भगवान के अर्पण कर देता है, वह भगवान् को प्रिय होता है।

१३. संसार में एक परमात्मतत्व ही जानने योग्य है। उसको जानने पर अमरता की प्राप्ति हो जाती है।

१४. संसार धर्म से छूटने के लिये सत्व, रज और तम--इन तीनों गुणों से अतीत होना जरूरी है। अनन्य भक्ति से भी मनुष्य इन तीनों गुणों से अतीत हो जाता है।

१५. इस संसार का मूल आधार और सबसे श्रेष्ठ परम हितैषी एक परमात्मा ही है - ऐसा मानकर अनन्य भाव से उनका भजन करना चाहिये।

१६. दुर्गुण, दुराचारों से ही मनुष्य चौरासी लाख योनियों एवं नरकों में जाता है और दुःख पाता है। अतः जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिये दुर्गुण-दुराचारों का त्याग करना आवश्यक है।

१७. मनुष्य श्रद्धापूर्वक जो भी शुभ कार्य करे, उसको भगवान का स्मरण करके, उसके नाम का उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

१८. सब ग्रन्थों का सार वेद हैं, वेदों का सार उपनिषद् हैं, उपनिषदोंका सार गीता है और गीता का सार भगवान की शरणागति है। जो अनन्यभाव से भगवान की शरण हो जाता है, उसे भगवान सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देते हैं।

(पूज्य स्वामी रामसुखदास जी)

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण करता रहता है।

जो उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरता है, उसका जन्म निश्चित है। अतः इस अपरिहार्य बात का शोक नहीं करना चाहिए।

- श्रीमद्भगवद्गीता

(३)
भारतामृत

यक्ष के कुछ प्रश्न तथा युधिष्ठिर के उत्तर

महाभारत के वन पर्व के ३१३ वें अध्याय के लगभग ८६ श्लोकों में विस्तृत यक्ष तथा युधिष्ठिर की वार्ता का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया गया है। प्रसंग यह है कि वनवास के १२ वर्ष व्यतीत होने पर द्वैतवन में विचरण करते हुए पाण्डवों के रहते एक मृग किसी ब्राह्मण की अरणी तथा मन्थन काष्ठ (हवन के उपकरण) लेकर भाग गया। ब्राह्मण की प्रार्थना पर युधिष्ठिर ने क्रमशः नकुल, सहदेव, भीम तथा अर्जुन को मृग की खोज कर ब्राह्मण के उपकरण वापस प्राप्त करने के लिये एक-एक करके भेजा। घनघोर जंगल में भटकते उन्हें मृग तो नहीं मिला किंतु वे भूख-प्यास से अति व्याकुल होकर एक सरोवर में पानी पीने के लिए उद्यत हुए। सरोवर के स्वामी यक्ष ने उन्हें पानी पीने से मना किया और अपने प्रश्नों का उत्तर दे देने पर ही पानी पीने की शर्त रखी किंतु एक के बाद एक इन चारों बलवान भाइयों ने उसकी अवज्ञा करके जलपान किया और परिणामस्वरूप सभी वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अंततः सभी अनुजों के लापता हो जाने के कारण अति व्याकुल युधिष्ठिर खोजते हुए वहीं पहुँचे तो उन सबके मृतक जैसे शरीर सरोवर के किनारे देखकर चकित हुए। वे भी पानी पीने चले तो यक्ष ने सरोवर पर अपने अधिकार तथा प्रश्नों का उत्तर देने की शर्त के साथ ही चारों भाइयों की दुर्गति की कथा सुनाई। युधिष्ठिर ने यक्ष के अधिकार को स्वीकार कर उसके सभी प्रश्नों का सटीक उत्तर दिया। तब यक्ष ने अपने किसी एक अनुज का जीवन माँगने का वरदान दिया। युधिष्ठिर ने नकुल को जीवित करने की प्रार्थना की तो आश्चर्यचकित यक्ष ने इसका कारण पूछा। युधिष्ठिर ने बतलाया कि अपनी दोनों माताओं - कुन्ती और माद्री को वे समदृष्टि से देखते हैं। अतः माद्री के एक पुत्र की प्राणरक्षा उन्होंने पहले चाही। युधिष्ठिर की धर्मप्रियता पर यक्ष चारों भाइयों का जीवन लौटा देता है क्योंकि धर्म का पालन करने पर धर्म स्वयं पालनकर्ता की रक्षा के लिए पर्याप्त होता है।

प्रश्न - किंस्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः।
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्चप्रतितिष्ठिति।।

सूर्य को कौन ऊपर उठाता है? उसके चारों ओर कौन चलते हैं? उसे अस्त कौन करता है ? वह किसमें प्रतिष्ठित है ?

उत्तर - ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चरा :।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति।।

ब्रह्म सूर्य को ऊपर उठाता (उदित करता) है, देवता उसके चारों ओर चलते हैं, धर्म उसे अस्त करता है तथा वह सत्य में प्रतिष्ठित है।

प्रश्न - केनस्विच्छ्रोत्रियो भवति केनस्विद् विन्दते महत्।
केनस्विद् द्वितीयवान् भवति राजन् केन च बुद्धिमान्।।

मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है? महत्पद कैसे प्राप्त करता है? किसके द्वारा वह द्वितीयवान् (मित्रवान्) होता है? किस कार्य के द्वारा बुद्धिमान होता है?

उत्तर - श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत्।
धृत्या द्वितीयवान् भवति बुद्धिमान् वृद्धसेवया।।

मनुष्य वेदाध्ययन द्वारा श्रोत्रिय होता है। तपस्या द्वारा महत्पद पाता है। धैर्य द्वारा द्वितीयवान् होता है और वृद्धसेवा द्वारा बुद्धिमान होता है।

प्रश्न - किं ब्राह्मणानां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव।।

ब्राह्मणों में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों जैसा धर्म क्या है? उनका मनुष्यभाव क्या है ? उनमें असत्पुरुषों जैसा आचरण क्या है ?

उत्तर - स्वाध्याय एषा देवत्वं तप एषां सतामिव।
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव।।

स्वाध्याय देवत्व है। तपस्या उनका सत्पुरुषों जैसा धर्म है। मरण उनका मनुष्य भाव है और निन्दा असत्पुरुषों जैसा आचरण है।

प्रश्न - किं क्षत्रियाणां देवत्वं कश्च धर्मः सतामिव।
कश्चैषां मानुषो भावः किमेषामसतामिव।।

क्षत्रियों में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों जैसा धर्म क्या है ? उनका मनुष्य-भाव क्या है और उनमें असत्पुरुषों जैसा आचरण क्या है?

उत्तर - इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव।
भयं वै मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव।।

वाणविद्या क्षत्रियों का देवत्व है। यज्ञ उनका सत्पुरुषों का धर्म है। भय उनका मनुष्य भाव है तथा शरणागत का परित्याग उनका असत्पुरुषों जैसा आचरण है।

प्रश्न - इंद्रियार्थानुभवन् बुद्धिमान् लोकपूजितः।
सम्मतः सर्वभूतानामुच्छ्वसन् को न जीवति।।

इंद्रियों के विषयों का अनुभव करते हुए, बुद्धिमान, लोकपूजित तथा सभी लोगों का माननीय होकर श्वास लेते हुए भी कौन वस्तुतः मृतकतुल्य है।

उत्तर - देवतातिथि भृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन् न स जीवति।।

जो देवता, अतिथि, सेवक, पत्नी एवं कुटुम्बियों तथा आत्मा इन पाँचों का पोषण नहीं करता, वह श्वास लेते हुए भी मृतक है।

प्रश्न - किंस्विद् गुरुतरं भूमेः किंस्विदुच्चतरं च खात्।
किस्विच्छीघ्रतरं वायोः किंस्विद् बहुतरी तृणात्।।

पृथ्वी से भारी क्या है ? आकाश से ऊँचा क्या है ? वायु से भी शीघ्र चलने वाला कौन है ? तिनकों से भी अधिक संख्या किसकी है ?

उत्तर - माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात्।।

माता का गौरव पृथ्वी से भारी है, पिता का गौरव आकाश से ऊँचा है। मन वायु से भी तेज चलने वाला है। चिंता तिनकों से भी अधिक असंख्य है।

प्रश्न - किंस्वित्प्रवसतो मित्रं किंस्विन्मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य च किन्मित्रं किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः।।

प्रवासी (परदेश यात्री) का मित्र कौन है? गृहस्थ का मित्र कौन है? रोगी का मित्र कौन है? मरने वाले व्यक्ति का मित्र कौन है?

उत्तर - सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्यामित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः।।

साथ में यात्रा करने वाला प्रवासी का मित्र है। धर्मपत्नी गृहस्थ की मित्र है। वैद्य रोगी का मित्र है और दान मरने वाले आदमी का मित्र है।

प्रश्न - कोऽतिथिः सर्वभूतानां किंस्विद् धर्मं सनातनम्।
अमृतं किंस्विद् राजेन्द्र किंस्विद् सर्वमिदं जगत्।।

सभी प्राणियों का अतिथि कौन है ? सनातन धर्म क्या है ? अमृत क्या है ? सारा जगत् क्या है ?

उत्तर - अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम्।
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत्।।

सभी प्राणियों का अतिथि अग्नि है। गाय का दूध अमृत है । अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है। सारा जगत वायु है।

प्रश्न - कश्चधर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।
कं नियम्य न शोचन्ति कैश्च संधिर्न जीर्यते।।

लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है ? नित्य फल वाला धर्म क्या है? किसे वश में रखने से दुःख नहीं होता ? किनके साथ की हुई मित्रता नष्ट नहीं होती?

उत्तर - आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयी धर्मः सदाफलः।
मनो यस्य न शोचन्ति सन्धिः सद्भिर्नजीर्यते।।

लोक में दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त धर्म नित्य फल वाला है। जिसका मन वश में है, वह दुःखी नहीं होता और सज्जनों की मित्रता नष्ट नहीं होती।

प्रश्न - किं नु हित्वा प्रियो भवति किं नु हित्वा न शोचति।
किं नु हित्वार्थवान् भवति किं नु हित्वा सुखी भवेत्।।

किसे त्याग कर मनुष्य प्रिय होता है? किसे त्यागने से दुखी नहीं होता? किसे त्यागने से धनवान होता है ? किसे त्यागने से सुखी होता है ?

उत्तर - **मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति।**
कामं हित्वार्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत्।।

मान त्याग कर मनुष्य सुखी होता है। क्रोध त्यागने से दुखी नहीं होता। कामना-त्याग से वह धनवान होता है तथा लोभ के त्याग से सुखी होता है।

प्रश्न - **केनस्विदावृतो लोकः केनस्विन्न प्रकाशते।**
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति।।

जगत किससे ढँका हुआ है ? किसके कारण वह प्रकाशित नहीं होता। किसके कारण मनुष्य मित्रों का त्याग कर देता है तथा किस कारण वह स्वर्ग नहीं प्राप्त करता ?

उत्तर - **अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते।**
लोभात् त्यजति मित्राणि संगात् स्वर्गं न गच्छति।।

जगत अज्ञान से ढँका हुआ है, वह तमोगुण के कारण प्रकाशित नहीं हो पाता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रों का त्याग करता है तथा आसक्ति के कारण वह स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाता।

प्रश्न - **मृतः कथं स्यात्पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतं भवेत्।**
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत्।।

पुरुष किस प्रकार मृतक कहा जाता है, राष्ट्र क्यों मृतकतुल्य हो जाता है, श्राद्ध और यज्ञ कैसे मृत (निष्फल) हो जाते हैं ?

उत्तर - **मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम्।**
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः।।

दरिद्र पुरुष मृतकतुल्य है, राजारहित राष्ट्र मृतकतुल्य है, वेदज्ञान रहित ब्राह्मण द्वारा कराया गया श्राद्ध और दक्षिणारहित यज्ञ निष्फल हो जाता है।

प्रश्न - **कः शत्रुर्दुर्जयः पुंसां कश्च व्याधिरनन्तकः।**
कीदृशश्च स्मृतः साधुरसाधुः कीदृशः स्मृतः।।

मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन है ? अनन्त व्याधि क्या है ? साधु कौन माना जाता है और असाधु किसे कहते हैं ?

उत्तर - क्रोधःसुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः।।

क्रोध दुर्जयशत्रु है, लोभ अनन्त व्याधि है, समस्त प्राणियों का हित करने वाला साधु है और निर्दयी पुरुष असाधु माना गया है।

प्रश्न - धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्पर विरोधिनः।
एषां नित्य विरुद्धानां कथमेकत्र संगमः।।

धर्म, अर्थ और काम परस्पर विरोधी हैं। इन नित्य विरोधी पुरुषार्थों का एकत्र संगम कैसे संभव है ?

उत्तर - यदा धर्मश्च भार्या च परस्पर वशानुगौ।
तदा धमार्थ कामानां त्रयानामपि संगमः।।

जब धर्म और भार्या ये दोनों परस्पर अविरोधी होकर मनुष्य के वश में हो जाते हैं तो धर्म, अर्थ और काम तीनों परस्पर विरोधियों का भी एक साथ रहना सहज हो जाता है।

प्रश्न - राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम्।।

हे राजन्, कुल, आचार, स्वाध्याय या शास्त्रश्रवण इनमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व की सिद्धि होती है, निश्चित बतलाओ।

उत्तर - श्रृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः।।
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः।।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पंडितः।।
चतुर्वेदोऽपि दुर्वत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः।।

हे यक्ष, सुनो-कुल, स्वाध्याय और वेद ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं। ब्राह्मणत्व की प्राप्ति का कारण तो निस्सन्देह आचार ही है। ब्राह्मण को आचार की रक्षा विशेषतः प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए क्योंकि आचार सुरक्षित है तो ब्राह्मणत्व भी सुरक्षित है, आचार नष्ट हुआ तो ब्राह्मणत्व भी नष्ट है।

पढ़ने-पढ़ाने तथा शास्त्रचिंतन के बावजूद भी ब्राह्मण व्यसनी और मूर्ख हो सकता है। अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन करने वाला ही पंडित है। चारों वेदों में पारंगत होने पर भी यदि आचारहीन है तो वह ब्राह्मण शूद्र से भी गया-गुजरा है। जो अग्निहोत्र में तत्पर और जितेन्द्रिय है, वही ब्राह्मण कहा जाता है।

प्रश्न - **कः मोदते किमाश्चर्यं कः पन्था का च वार्तिका।**
ममैतांश्चतुरः प्रश्नान् कथयित्वा जलं पिब।।

कौन सुखी है? आश्चर्य क्या है ? मार्ग क्या है ? वार्ता क्या है ? मेरे इन चार प्रश्नों का उत्तर देकर जल पियो।

उत्तर - (१) सुखी कौन है ?

पंचमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते।।

अपने घर में पाँचवें या छठवें दिन भी केवल साग पकने की स्थिति हो किंतु किसी कर्ज का बोझ न हो तथा परेदश में न पड़ा हो, तो ऐसा व्यक्ति सुखी है।

(२) आश्चर्य क्या है ?

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

संसार में रोज-रोज प्राणी मर रहे हैं, अपनी आँखों के सामने यह देखते हुए भी बचे हुए लोग स्थायित्व की इच्छा रखते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या है ?

उत्तर - (३) मार्ग क्या है ?

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितो गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।

तर्क से समाधान नहीं मिलता, वेद भी भिन्न-भिन्न हैं, एक भी ऋषि ऐसा नहीं जिसे अंतिम रूप से प्रमाण मान लें। धर्म का तत्व अत्यन्त गूढ़ है। ऐसी स्थिति में महापुरुषों द्वारा दिखाया गया मार्ग ही गंतव्य मार्ग है।

उत्तर - (४) वार्ता (बात) क्या है ?

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता।

इस संसार के महामोह रूपी कड़ाहे में रात्रि और दिन रूपी ईंधन के द्वारा प्रज्वलित सूर्याग्नि में मास और ऋतु रूपी कलछुल से महाकाल निरन्तर जीवों को उलट-पुलट कर पका रहा है, यही एकमात्र (विचारणीय) वार्ता है।

☀ हे मनुष्यो! अधिक कहने से क्या लाभ? हम तुम्हें संक्षेप में धर्म का तत्व बता देते हैं। परोपकार करना पुण्यकर्म है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है।

☀ धर्म का सार सुनो और सुनकर हृदयंगम करो-जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो, वैसा आचरण दूसरे के साथ मत करो।

उसी ने धर्म को जाना जो कर्म से, मन से और वाणी से सबका हित करने में लगा हुआ है और जो सभी का स्नेही है।

☀ जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक होता है वह धर्म नहीं, कुधर्म है। सच्चा धर्म वही है जो किसी दूसरे धर्म का विरोधी न हो। (महाभारत)

(४)

भागवतामृत

१. जिस प्रकार गंगा का अखंड प्रवाह समुद्र की ओर बहता रहता है,उसीप्रकार मेरे (भगवान के) गुणों के श्रवण से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना ही निर्गुण भक्तियोग है।

(श्रीमद्भागवत १/२९/११-१२)

२. मनुष्य अपने धर्म का अनुष्ठान करते हुए प्रतिमा आदि में केवल तब तक पूजा करता रहे जब तक उसे अपने हृदय में सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित परमात्मा का अनुभव न हो जाय। (भागवत ३/२९/२५)

३. जो मनुष्य से द्वेष करते हैं, उन्हें प्रतिमा की उपासना करने पर सिद्धि नहीं मिल सकती। (भागवत ७/१४/४०)

४. अपने प्रिय सम्बन्धी को जो इस प्रकार की भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं, स्वजन स्वजन नहीं, पिता पिता नहीं, माता माता नहीं तथा वह इष्टदेव इष्टदेव नहीं है।

(भागवत ५/५/१८)

५. शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों का भी वर्णन है। आत्मविद्या, कर्मकाण्ड, न्याय और जीविका के साधन ये सभी वेदों के प्रतिपाद्य विषय हैं किन्तु यदि ये अपने परम हितैषी परम पुरुष भगवान श्री हरि को आत्म समर्पण करने में सहायक हैं, तभी ये सत्य माने जा सकते हैं, अन्यथा ये सबके सब निरर्थक हैं। (भागवत ७/६/२६)

६. (विचारशील पुरुषों के लिए भागवत का संदेश यही है कि वे) स्वानुभूति से आत्मा के त्रिविध अद्वैत-भावाद्वैत, क्रियाद्वैत तथा द्रव्याद्वैत का साक्षात्कार करें तथा जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अथवा द्रष्टा, दर्शन और दृश्य के भेद को मिटा दें। (भागवत ७/१५/६३-६५)

७. जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम-फिर कर समुद्र में ही पहुँचती हैं उसी

प्रकार मनस्वी पुरुषों का वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्म विवेक, त्याग, तपस्या, इंद्रिय-संयम, सत्य आदि समस्त धर्म मेरी प्राप्ति में ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा आत्मसाक्षात्कार क्योंकि सब साधन मन को निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं। (भागवत १०/४७/३३)

८. जो मनुष्य परम चिन्तन करना चाहता है, उसे अन्तर्मुख बनाने वाले निष्काम कर्म करने चाहिए तथा बहिर्मुखी एवं सकाम कर्मों का बिल्कुल परित्याग कर देना चाहिए। (भागवत ११/१०/४)

९. मन ही मनुष्य का सबसे बलवान शत्रु है। उपेक्षा करने से इसकी शक्ति और बढ़ जाती है। यद्यपि यह स्वयं मिथ्या है तथापि इसने मनुष्य के आत्मस्वरूप को आच्छादित कर रखा है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उपासना के अस्त्र से इसे मार डाले। (भागवत ५/१२/१७)

१०. मन को महत्त्व देने वाले संसारी लोग पिसे हुए को फिर पीसते हैं, चबाए हुए को फिर-फिर चबाते हैं। इंद्रियों पर वश न होने के कारण अज्ञानी जीव भोगे हुए विषयों को फिर-फिर भोगने की ओर उद्यत होते हैं तथा इस प्रकार नरक की ओर जाते हैं। (भागवत ७/५/३०)

११. मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं-मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, युक्तिपूर्वक शास्त्र की व्याख्या, एकान्तसेवन, जप एवं समाधि। परन्तु जिनकी इंद्रियाँ वश में नहीं होतीं, उनके लिए ये सभी के सभी साधन जीविकोपार्जन के साधन अथवा व्यापार मात्र रह जाते हैं। दंभियों के लिए तो ये जीवन-निर्वाह के साधन भी तभी तक सिद्ध होते हैं, जब तक उनकी पोल नहीं खुल जाती। (भागवत ७/९/४६)

१२. भागवत धर्म -

- समस्त कर्मों का ईश्वर के प्रति समर्पण।
- ईश्वर के स्मरण द्वारा मन तथा चित्त को उसके प्रति समर्पित करने का अभ्यास तथा अभेदत्व की स्थिति प्राप्त करना।
- साधुजनों तथा अनन्य भगवद्भक्तों की संगति तथा उनके आचरणों का अनुकरण।

- पर्व के अवसर पर अकेले या समूह में गीत, नृत्य आदि सहित भगवान की महाविभूति का स्मरण।
- शुद्ध अन्तःकरण द्वारा भीतर-बाहर सर्वत्र आकाश की तरह व्याप्त परमात्मा को ही समस्त प्राणियों में तथा अपने हृदय में देखना।
- ब्राह्मण चाण्डालादि में समानदृष्टि रखना।
- सभी नर-नारियों में उसी एक परमेश्वर की भावना करते हुए स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि दोषों से मुक्ति।
- देहदृष्टि का परित्याग, निंदा-स्तुति की परवाह न करना।
- समस्त प्राणियों में भगवद्भावना होने तक मन, वाणी और शरीर के सभी संकल्पों एवं कर्मों द्वारा ईश्वर की उपासना करते रहना।
- आत्मबुद्धि और ब्रह्मबुद्धि के निरन्तर अभ्यास द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्मस्वरूप देखने का सच्चा ज्ञान।

(भागवत ११/२६/२३)

अज्ञानता

पुष्पवाटिका में अपनी प्रिया हिरणी के साथ विहार करते हुए हिरणा मस्ती के साथ घूम रहा है और दूब आदि छोटे-छोटे अंकुरो को चर रहा है। उसके कान भौंरों के मधुर गुंजार सुनकर तृप्त हो रहे हैं। इसी आनंद-विहार में वह बेसुध है। इधर सामने ही हिंसक भेड़िया उसकी ओर घात लगाये बैठा है तथा पीछे की ओर से शिकारी बहेलिया उसे मारने के लिए वाण छोड़-चुका है। दोनों ओर से प्राणसंकट आसन्न है किंतु बेचारे हिरण को इसका ज्ञान ही नहीं है क्योंकि वह तो अपनी छोटी सी दुनिया में ही भूला हुआ है।

-श्रीमद्भागवत ४/२९/५३

(५)

बुद्धवाणी

१. दूसरों की त्रुटियों या कृत्य और अकृत्यों की खोज में न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियों और कृत्य-अकृत्यों पर विचार करो।

२. उस काम का करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसका फल रोते-बिलखते भोगना पड़े।

३. उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसका फल मनुष्य प्रसन्न-चित्त से ग्रहण करे।

४. संतों ने कहा है कि सुभाषित वाक्य ही उत्तम है। धर्म की बात कहना, अधर्म की न कहना, यह दूसरा सुभाषण है। प्रिय बोलना, अप्रिय न बोलना, यह तीसरा सुभाषण है। सत्य बोलना, असत्य न बोलना, यह चौथा सुभाषण है।

५. जैसे महान पर्वत हवा के झकोरों से विकंपित नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा और स्तुति से विचलित नहीं होते।

६. वही पुरुष शीलवान और धार्मिक है, जो न अपने लिए और न दूसरे के लिए पुत्र, धन आदि की इच्छा करता है और जो अधर्म से अपनी समृद्धि नहीं चाहता।

७. सहस्रों अनर्थक वाक्यों से एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

८. प्रिय वही बात बोलनी चाहिए, जो आनंदायक हो और ऐसा न हो कि दूसरे के लिए प्रिय बात बोलने से पाप लगे।

९. जो अभिवादनशील और सदा वृद्धों की सेवा करने वाले हैं, उनके ये चारों धर्म बढ़ते हैं-आयु, वर्ण, सुख और बल।

१०. एक दिन का सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्ष के शीलरहित और अमर्यादित जीवन से अच्छा है।

११. जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुष को दोष लगाता है, उस मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे वायु के रुख फेंकी हुई धूल अपने

ऊपर सहज ही पड़ती है।

१२. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है; दूसरा कौन उसका स्वामी या सहायक हो सकता है ? अपने को जिसने भली-भांति दमन कर लिया, वह ही एक दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त कर लेता है।

१३. अनुचित और अहितकारी कर्मों का करना आसान है। हितकर और शुभ कर्म परम दुष्कर हैं।

१४. जो पहले प्रमाद में था और अब प्रमाद से निकल गया, वह इस लोक को मेघ-माला से उन्मुक्त चंद्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

१५. सत्य अमृतवाणी है, वही सनातन नियम है।

१६. जिसने एक धर्म को छोड़ दिया है, जो झूठ बोलता है और जो परलोक का ख्याल नहीं करता, उसके लिए कोई भी पाप अकरणीय नहीं।

१७. श्रेष्ठ पुरुष का पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नहीं लेता। धन्य है वह सुख-संपन्न कुल, जहां ऐसा धीर पुरुष उत्पन्न होता है!

१८. विजय से वैर पैदा होता है; पराजित पुरुष दुःखी होता है। जो जय और पराजय को छोड़ देता है, वही सुख की नींद सोता है।

१९. राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई पाप नहीं। पंचस्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दुःख नहीं, और शांति के समान कोई सुख नहीं।

२०. भूख सबसे बड़ा रोग है; शरीर सबसे बड़ा दुःख है-इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थ में निर्वाण ही परम सुख है।

२१. आरोग्य परमलाभ है। संतोष परमधन है। विश्वास परमबंधु है और निर्वाण परमसुख है।

२२. सत्पुरुषों का दर्शन अच्छा है। संतों के साथ रहना सदा सुखकारक है। मूर्खों के अदर्शन से (अलग रहने से) मनुष्य सचमुच सुखी रहता है।

२३. मूर्खों की संगति में रहनेवाला मनुष्य चिरकाल तक शोकनिमग्न रहता है। मूर्खों की संगति शत्रुओं की तरह सदा ही दुःखदायक होती है और धीर पुरुषों का सहवास अपने बंधु बांधवों के समान सुखदायी होता है।

२४. सदा सच बोलना, क्रोध न करना और याचक को यथेच्छ दान देना--इन तीनों बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है।

२५. यह पुरानी बात है, कुछ आज की नहीं कि जो नहीं बोलता उसकी भी लोग निंदा करते हैं और जो बहुत बोलता है, उसे भी दोष लगाते हैं। इसी तरह मितभाषी की भी लोग निंदा करते हैं। संसार में ऐसा कोई नहीं, जिसकी लोग निंदा न करें। बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न कभी हुआ, न कभी होगा और न आजकल है।

२६. काया को उद्विग्न होने से बचा; काया का दमन कर; काया के दुश्चरित को छोड़; काया के सुचरित का आचरण कर।

२७. वाणी को उद्विग्न होने से बचा; वाणी को संयत रख; वाणी के दुश्चरित को छोड़; वाणी के सुचरित का आचरण कर।

२८. मन को उद्विग्न होने से बचा; मन को वश में कर; मन के सुचरित का आचरण कर।

२९. राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई अरिष्ट ग्रह नहीं; मोह के समान कोई जाल नहीं, और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

३०. जैसे सुनार चाँदी के मैल को दूर करता है, उसी तरह बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह अपने मलों (पापों) को प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा दूर करता रहे।

३१. यह लोहे का मुरचा ही है, जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप-कर्म ही उसे दुर्गति को पहुंचाते हैं।

३२. उपासना का मुरचा अनभ्यास है। मकान का मुरचा उसकी बेमरम्मती है। शरीर का मुरचा आलस्य है और संरक्षक का मुरचा प्रमाद है।

३३. जो प्राणियों की हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है; जो संसार में न

दी हुई चीज को उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो परायी स्त्री के साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य लोक में अपनी जड़ आपही खोदता है।

३४. दूसरे का दोष देखना आसान है; किन्तु अपना दोष देखना कठिन है। लोग दूसरे के दोषों को भूस के समान फटकते फिरते हैं, किंतु अपने दोषों को इस तरह छिपाते हैं, जैसे चतुर जुआरी हारने वाले पासे को छिपा लेता है।

३५. जो दूसरों के दोषों को ही सदा देखा करता है और हमेशा हाय-हाय किया करता है, उसकी वासनाएं बढ़ती ही जाती हैं, और वह उनका नाश नहीं कर सकता।

३६. बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं होता। जो क्षमाशील, वैररहित और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है।

३७. वह धर्मधर नहीं, जो बहुत बोलता है। वही धर्मधर है और वही धर्म-विषयों में अप्रमादी है, जिसने चाहे थोड़ा ही धर्म सुना है, पर जो धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है।

३८. यदि किसी के सिर के बाल पक जायं, तो इससे वह स्थविर या बड़ा नहीं हो जाता। उसकी उम्र भले ही पक गई हो, किंतु वह व्यर्थ ही वृद्ध कहा जाता है।

४०. जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत बोलने या सुंदर रंग-रूप के कारण साधु नहीं हो सकता।

४१. साधु वही है, जिसके दोष जड़मूल से नष्ट हो गये हैं। जो विगत-दोष और मेधावी है, वही साधु है।

४२. अनियमित और मिथ्याभाषी मनुष्य मूंछ मुंड़ाने मात्र से ही भिक्षु नहीं हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य भिक्षु हो सकता है, जो वासना और लोभ से युक्त हो ?

४३. वही असल में भिक्षु है, जिसने छोटे-बड़े सब पाप त्याग दिये हैं। जिसके

पाप शमित हो गये हैं, वही श्रमण कहा जाता है।

४४. भिक्षा मांगनेमात्र से कोई भिक्षु नहीं होता। भिक्षु वही होता है, जो धर्मानुकूल आचरण करता है।

४५. जो पाप और पुण्य से ऊँचा उठकर ब्रह्मचारी बन गया है, जो लोक में धर्म के साथ विचरता है, उसी को भिक्षु कहना चाहिए।

४६. अज्ञानी और मूढ़ मनुष्य केवल मौन से मुनि नहीं हो जाता। वही मनुष्य मुनि है, जो तराजू की तरह ठीक-ठीक जांच करके सुव्रतों का ग्रहण और पापों का त्याग करता है। जो दोनों-लोकों का मनन करता है, वही सच्चा मुनि है।

४७. जो प्राणियों की हिंसा करता है, वह आर्य नहीं। समस्त प्राणियों के साथ जो अहिंसा का बर्ताव करता है, वही आर्य है।

४८. यदि थोड़ा सुख छोड़ देने से विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान पुरुष विपुल सुख का ख्याल करके उस थोड़े-से सुख को छोड़ दे।

४६. दूसरे को दुःख देकर जो अपना सुख चाहता है, वह बैर के जाल में फंसकर उससे छूट नहीं सकता।

५०. ऐसे ही उन्मत्त और प्रमत्त लोगों के आस्रव (चित्त के मल) बढ़ते हैं, जो कर्त्तव्य को छोड़ देते हैं और अकर्त्तव्य को करते हैं।

५१. जो शरीर की अनित्य गति को विचारते हैं, जो अकर्त्तव्य से दूर रहते और कर्त्तव्य कृत्य को करते हैं, उन ज्ञानी सत्पुरुषों के आस्रव अस्त हो जाते हैं।

५२. श्रद्धावान, शीलवान, यशस्वी और धनी पुरुष जिस देश में जाता है, वहां वह पूजा जाता है।

५३. हिमालय के धवल शिखरों के समान संतजन दूर से ही प्रकाशते हैं, और असंत लोग इस तरह अदृष्ट रहते हैं, जैसे रात में छोड़ा हुआ वाण।

५४. काषाय वस्त्र पहननेवाले बहुत-से पापी और असंयमी मिलेंगे। ये सब

अपने पाप-कर्म के द्वारा नरकलोक को जायेंगे।

५५. असंयमी और दुराचारी मनुष्य राष्ट्र का अन्न व्यर्थ खाये, इससे तो आग में गरम किया हुआ लोहे का लाल गोला खा जाय, वह अच्छा।

५६. परस्त्री-गमन करने से अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यंत रति, यही मिलता है। इसलिए मनुष्य को परस्त्री-गमन नहीं करना चाहिए।

५७. जैसे असावधानी से पकड़ा हुआ कुश हाथ को काट देता है, उसी तरह असावधानी के साथ संन्यास ग्रहण करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है।

५८. दुष्कृत (पाप) का न करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि दुष्कृत करनेवाले को पीछे पछताना पड़ता है। सुकृत का करना ही श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य को अनुताप न करना पड़े।

५९. मुनि को गांव में इस प्रकार विचरना चाहिए, जिस प्रकार भौंरा फूल के रंग और सुगंध को न बिगाड़ता हुआ उसके रस को लेकर चल देता है।

६०. कोई भी सुगंध, चाहे वह चंदन की हो, चाहे तगर की या चमेली की, वायु से उलटी ओर नहीं जाती। किंतु सत्परुषों की सुगंध वायु से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुषों की सुगंध सभी दिशाओं को सुवासित करती है।

६१. चंदन या तगर, कमल या जूही इन सबकी सुगंध से सदाचार की सुगंध श्रेष्ठ है।

६२. तगर और चंदन की जो गंध है वह अल्पमात्र है और जो सदाचारियों की उत्तम गंध है, वह देवताओं तक पहुंचती है।

६३. चाहे कितनी ही धर्मसंहिताओं का पाठ करे, किन्तु प्रमादी मनुष्य उन संहिताओं के अनुसार आचरण करने वाला नहीं होता, अतः वह श्रमण अर्थात् साधु नहीं हो सकता। वह तो उस ग्वाले के समान है, जो

दूसरों की गायों को गिनता रहता है।

६४. जो पुरुष राग-द्वेषादि कषायों (मलों) को बिना छोड़े ही काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर लेता है और जिसमें न संयम है, न सत्य, वह काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं।

६५. जिसने कषायों (मलों) का त्याग कर दिया, जो सदाचार, संयमी और सत्यवान है, वही काषाय वस्त्र धारण कर सकता है।

६६. जिस प्रकार कलछी-तरकारी के स्वाद को नहीं समझ सकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिंदगी पंडितों की सेवा में रहकर भी धर्म और ज्ञान का रस प्राप्त नहीं कर सकता।

६७. जिस प्रकार जीभ दाल-तरकारी को चखते ही स्वाद पहचान लेती है, उसी प्रकार विज्ञ पुरुष पंडितों की सेवा में मुहूर्तमात्र रहकर भी धर्म और ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

६८. जबतक पाप का परिपाक नहीं होता, तभी तक मूर्ख मनुष्य को वह मधु-सा मीठा लगता है; किंतु जब पाप-कर्म के फल लगते हैं, तब उस मूर्ख को भारी क्लेश होता है।

६९. जिनके पास कोई मालमत्ता नहीं, जो संचय करना नहीं जानते, जिनका भोजन नियत है, जिन्हें जगत् शून्यता-स्वरूप दिखाई देता है और जिन्होंने निर्वाण-पद प्राप्त कर लिया है, उनकी गति उस प्रकार मालूम नहीं हो सकती, जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की गति।

७०. सौ वर्ष के आलसी और हीनवीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मण्यता का जीवन कहीं अच्छा है।

७१. न आकाश में, न समुद्र में, न पर्वतों की खोह में कोई ऐसा ठौर है, जहां पापी प्राणी अपने किये हुए पाप-कर्मों से त्राण पा सके।

७२. बुढ़ापे तक सदाचार का पालन करना सुखकर है। स्थिर श्रद्धा सुखकर है। प्रज्ञा का लाभ सुखकर है और पाप-कर्मों का न करना सुखकर है।

७३. जिसने हाथ, पैर और वाणी को संयम में रखा है, वही सर्वोत्तम संयमी

है। मैं उसी को भिक्षु कहता हूँ जो अपने में मस्त है, जो संयत है, एकांतसेवी है और संतुष्ट है।

७४. जिस भिक्षु की वाणी अपने वश में है, और जो थोड़ा बोलता है, जो उद्धत नहीं है और धर्म को प्रकाश में लाता है, उसी का भाषण मधुर होता है।

७५. न तो अपने लाभ का तिरस्कार करे और न दूसरों के लाभ की स्पृहा।

७६. इस नाम-रूपात्मक जगत में जिसे बिल्कुल ही ममता नहीं और जो किसी वस्तु के न मिलने पर उसके लिए शोक नहीं करता, वह सच्चा भिक्षु है।

७७. ध्यान में रत रहो, प्रमाद मत करो। तुम्हारा चित्त भोगों के चक्कर में न पड़े। प्रमाद के कारण तुम्हें लोहे का लाल-लाल गोला न निगलना पड़े और दुःख की आग से जलते समय तुम्हें यह कहकर क्रंदन न करना पड़े कि "हाय, यह दुःख है!"

७८. जैसे जूही की लता कुम्हलाये हुए फूलों का त्याग कर देती है, वैसे ही तुम राग और द्वेष को छोड़ दो।

७९. अपने को अपने-आप उठा, अपनी आप परीक्षा कर। इस प्रकार तू अपनी आप रक्षा करता हुआ विचारशील हो सुखपूर्वक इस लोक में विहार करेगा।

८०. मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, आप ही अपनी गति है। इसलिए तू अपने को संयम में रख, जैसे बनिया अपने घोड़े को अपने काबू में रखता है।

८१. धर्मपूर्वक माता-पिता का भरण-पोषण करें, धर्मपूर्वक व्यवहार और वाणिज्य करें। गृहस्थों को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद छोड़कर अपना धर्म-पालन करना चाहिए।

८२. दुःख का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अत्यंत आवश्यक है।

८३. हंस, क्रौंच, मोर, हाथी और मृग, ये सभी पशु-पक्षी सिंह से भय खाते हैं। कौन शरीर में बड़ा है और कौन शरीर में छोटा, यह तुलना करना व्यर्थ है।

८४. संसर्ग होने से स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेह से दुःख होता है। यह स्नेह ही दोष है, ऐसा समझकर गैंडे के सींग की तरह एकाकी ही रहना चाहिए।

८५. देख, यह आसक्ति है; इसमें सुख थोड़ा है, आस्वाद कम है और दुःख अधिक। सावधान! यह मछली फंसाने का आंकड़ा है।

८६. जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचंड धार की नदी में उतरकर तैर न सकने के कारण बह जाता है और दूसरों को पार नहीं उतार सकता, वैसे ही जिस मनुष्य ने धर्मज्ञान का संपादन नहीं किया और विद्वानों के मुख से अर्थपूर्ण वचन नहीं सुने, जो स्वयं ही अज्ञान और संशय में डूबा हुआ है, वह दूसरों का किस प्रकार समाधान कर सकता है ?

८७. समाधान तो वह ज्ञानी पुरुष कर सकता है, जो विद्वान, संयतात्मा, बहुश्रुत तथा अप्रकंप्य होता है और जिसने श्रोतावधान के द्वारा निर्वाणज्ञान का संपादन किया है।

८८. तू तो निष्काम निर्वाण का चिंतन कर और अहंकारी वासना को छोड़ दे। अहंकार त्याग करने पर ही तुझे सुचिर शांति मिलेगी।

८९. जो निंदनीय मनुष्य की प्रशंसा अथवा प्रशंसनीय पुरुष की निंदा करता है, वह अपने ही मुख से अपनी हानि करता है, और इस हानि के कारण उसे सुख प्राप्त नहीं होता।

९०. जुए में धन गंवाने से जो हानि होती है वह कम है, किंतु सत्पुरुषों के सबंध में अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्वहानि से भी बढ़कर आत्म-हानि है।

९१. मूर्ख मनुष्य दुर्वचन बोलकर खुद ही अपना नाश करते हैं।

९२. जो छिछला या छिछोरा होता है, वही ज्यादा आवाज करता है, पर

जो गंभीर होता है, वह शांत रहता है। मूर्ख अधभरे घड़े की तरह शोर मचाते हैं, पर प्रज्ञावान गंभीर मनुष्य सरोवर की भांति सदा शांत रहते हैं।

९३. जो संयतात्मा पुरुष सबकुछ जानते हुए भी बोलते नहीं हैं, वे ही मुनि मौनव्रत के योग्य हैं।

९४. वंह अविद्या ही महान् मोह है, जिसके कारण मनुष्य चिरकाल से संसार में पड़ा है। किंतु जो विद्यालाभी प्राणी होता है, वह बार-बार जन्म नहीं लेता।

९५. जो भी दुःख होता है, वह सब संस्कारों से ही पैदा होता है; संस्कारों के निरोध से दुःख की उत्पत्ति असंभव हो जाती है।

९६. इस सारे प्रपंच का मूल अहंकार है। इसका जड़मूल से नाश कर देना चाहिए। अहंकार के समूल नाश से ही अंतःकरण में रमनेवाली तृष्णाओं का अंत हो जाता है।

९७. अनात्मा में आत्मा है, ऐसा माननेवाले और नामरूप के बंधन में पड़े हुए इन मूढ़ मनुष्यों की ओर तो देखो, वे यह समझते हैं कि "यही सत्य है।'

९८. वे जिस-जिस प्रकार की कल्पना करते हैं, उससे वह वस्तु भिन्न प्रकार की होती है और उनकी कल्पना झूठी ठहरती है; क्योंकि जो क्षणभंगुर होता है वह तो नश्वर है ही।

९९. ज्ञान बिना दया नहीं होती।

१००. जिस प्रकार सांप के फन से हम अपना पैर दूर रखते हैं, उसी प्रकार जो कामोपभोग से दूर रहता है, वह स्मृतिमान पुरुष इस विष-भरी तृष्णा का त्याग करके निर्वाण-पथ की ओर अग्रसर होता है।

१०१. वासना ही जिसका उद्देश्य हो और संसारी सुखों के बंधन में जो पड़ा हो, उसे छुड़ाना कठिन है; क्योंकि जो आगे या पीछे की आशा रखता है और अतीत या वर्तमान काल के कामोपभोग में लुब्ध रहता है, उसे कौन छुड़ा सकता है?

१०२ सोने-चाँदी के लाखों-कराड़ों सिक्कों को मैं श्रेष्ठ धन नहीं कहता। उसमें तो भय-ही-भय है-राजा का, अग्नि का, जल का, चोर का, लुटेरे का और अपने सगे-संबंधियों तक का भय है।

१०३. श्रेष्ठ और अचंचल तो मैं इन सात धनों को मानता हूँ - श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक-भय, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा। इस सत्पवित्र धन को कौन लूट सकता है और कौन छीन सकता है?

१०४. लोभ, द्वेष और मोह, ये पाप के मूल हैं। अलोभ अद्वेष और अमोह ये पुण्य के मूल हैं।

१०५. ये जो चंद्र और सूर्य आकाश-मंडल में प्रकाशित हो रहे हैं और ब्राह्मण जिन्हें नित्य स्तोत्रों के गान से रिझाते और पूजते हैं, उन चंद्र-सूर्य की ओर जाने का मार्ग क्या ये ब्राह्मण बतला सकेंगे ?

१०६. जो स्मृतिमान् मनुष्य अपने भोजन की मात्रा जानता है, उसे अजीर्ण की तकलीफ नहीं होती। वह आयु का पालन करते-करते बहुत वर्षों के बाद वृद्ध होता है।

१०७. कोई-कोई स्त्री तो पुरुष से भी श्रेष्ठ निकलती है। यदि वह बुद्धिमती, सुशील और बड़ों का आदर करनेवाली तथा पतिव्रता हो तो उसे कौन दोष दे सकता है ? उसके गर्भ से जो पुत्र जन्म लेता है, वह शूरवीर होता है। ऐसी सद्भाग्यवती स्त्री के गर्भ से जन्म लेनेवाला पुत्र साम्राज्य चलाने की पात्रता रखता है।

१०८. कृपण के धन की कैसी बुरी गति होती है ? कृपण मनुष्य से उसके जीवनकाल में किसी को सुख नहीं पहुंचता, उसका इकट्ठा किया हुआ सारा धन अंत में राजा के खजाने में जाता है या चोर लूट लेते हैं, अथवा उसके शत्रु ही उसे तिड़ी-बिड़ी कर देते हैं।

कृपण के धन की वैसी ही गति होती है, जैसे जंगल के उस तालाब की जिसका पानी किसी के काम नहीं आता और वह वहीं-का-वहीं सूख जाता है।

१०९. जरा और मरण तो भारी-भारी पर्वतों से भी भयंकर है। हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिकों की चतुरंगिणी सेना से कहीं जरा और मृत्यु की पराजय हो सकती है ? जरा और मृत्यु के घर यह भेद नहीं कि वह ब्राह्मण है और यह चांडाल।

११०. सदाचार-रत मनुष्य इस लोक में प्रशंसा पाता है, और परलोक में सद्गति।

१११. अपने हाथ से कोई अपराध हो गया हो तो उसे स्वीकार करना और भविष्य में फिर कभी अपराध न करना, यही गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

११२. धर्म को जानकर जो मनुष्य वृद्धजनों का आदर-सत्कार करते हैं, उनके लिए इस लोक में प्रशंसा है और परलोक में सुगति।

११३. भिक्षुओ! मैं तुम्हारी सेवा न करूंगा तो कौन करेगा ? यहां तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जो तुम्हारी सेवा-सुश्रूषा करते। तुम एक-दूसरे की सेवा न करोगे, तो फिर कौन करेगा ? जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी ही सेवा करता है।

११४. लोभ के फंदे में फंसा हुआ मनुष्य हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है और दूसरों को भी वैसा ही करने के लिए प्रेरित करता है।

११५. तुम खुद अपनी आंख से देखो कि यह धर्म अकुशल है, अतः त्याज्य है; इसे हम ग्रहण करेंगे तो हमारा अहित ही होगा। अकुशल धर्म का त्याग और कुशल धर्म का ग्रहण, दोनों तुम अपनी प्रज्ञा से करो-श्रुत से या मत-परंपरा से नहीं, प्रामाण्य शास्त्रों की अनुकूलता से या तर्क कारण नहीं, न्याय के हेतु से या अपने चिरचिंतित मत के अनुकूल होने से नहीं और वक्ता के आकार अथवा उसके भव्य रूप से प्रभावित होकर भी नहीं।

११६. मुक्त पुरुष सदा सुख की नींद सोता है। रागादि से रहित, नितांत अनासक्त और निर्भय पुरुष आंतरिक शांति में विहार करता हुआ

सुख की नींद सोता है।

११७. कटु वाक्य को सुनकर हमें उसे मन में न लाना चाहिए।

११८. हानि-लाभ को न देखकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा, हानि-लाभ को देखते हुए एक दिन का जीना अच्छा है।

११६. जो परवश है, वह सब दुःख है। सुख तो एक स्ववशता में ही है।

१२०. मूर्ख तब तक नहीं समझता जबतक कि वह पाप में पचता नहीं। पाप में जब वह पचने लगता है, तभी उसकी समझ में आता है कि अरे! यह तो पाप-कर्म है।

१२१. हत्या का फल हत्या है, निंदा का फल निंदा है और क्रोध का फल क्रोध। जो जैसा करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है।

१२२. रंग या रूप से मनुष्य सुज्ञेय नहीं होता। किसी को देखते ही उसपर विश्वास न कर लेना चाहिए। रूप और रंग से कितने ही मनुष्य संयमी-से मालूम होते हैं।

१२३. ऐसे मनुष्य मिट्टी के बने हुए नकली कुण्डल की तरह या सोने से मढ़े हुए तांबे के टुकड़े की तरह हैं। ऊपर से सुंदर किन्तु भीतर से वे महान् अशुद्ध होते हैं।

१२४. तुझे इस बात का अभ्यास करना चाहिए कि मेरे चित्त में विकार नहीं आने पावेगा, मुंह से दुर्वचन नहीं निकालूंगा और द्वेषरहित हो मैत्रीभाव से इस संसार में विचरण करूंगा।

१२५. तुम्हारे लिए दो ही कर्त्तव्य हैं-एक तो धर्म-वचन का मनन और दूसरा आर्य तूष्णीभाव अर्थात् उत्तम मौन।

१२६. उनके लिए अमृत का द्वार बन्द है, जो कानों के होते हुए भी श्रद्धा को छोड़ देते हैं।

१२७. वही बात बोलनी चाहिए, जिससे अपने को संताप न हो और जिससे किसी को दुःख न पहुंचे। यही सुभाषित वाक्य है।

१२८. परम लाभ आरोग्य है और परमसुख निर्वाण।

१२९. सत्य-प्राप्ति का उपकारी धर्म प्रयत्न है। मनुष्य प्रयत्न न करे तो फिर सत्य की प्राप्ति कहां से हो ? और प्रयत्न का उपकारी धर्म उद्योग है। बिना उद्योग के मनुष्य प्रयत्न नहीं कर सकता।

१३०. उच्च कुल में जन्म लेने से लोभ थोड़े ही नष्ट हो जाता है। उच्च कुल में जन्म लेने से न द्वेष ही नष्ट होता है और न मोह ही।

१३१. उच्च कुल में भले ही जन्म न लिया हो, किंतु यदि मनुष्य धर्ममार्ग पर आरूढ़ होकर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है वह तो प्रशंसनीय है, पूज्य है।

१३२. जो मनुष्य अपनी उच्च कुलीनता का अभिमान करता है और दूसरों को नीची निगाह से देखता है, वह प्रव्रज्या ले लेने पर भी असत्पुरुष ही कहलायेगा।

१३३. यह वृक्षों की छाया है, यह शून्य गृह है। प्रमाद मत करो, ध्यान करो।

१३४. चाहे गृहस्थ हो, चाहे संन्यासी, यदि वह मिथ्या प्रतिज्ञावाला है, तो वह मिथ्या प्रतिपत्ति (मिथ्याचरण) के कारण कुशल धर्म का आराधक नहीं हो सकता है।

१३५. उलीचो, उलीचो इस नाव को उलीचो! उलीचने से तुम्हारी यह नाव हल्की हो जाएगी और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेष का छेदन करके ही तुम निर्वाण-पद पा सकोगे।

१३६. काट डालो वासना के इस बीहड़ वन को, एक भी वृक्ष न रहने पाये। यह महाभयंकर वन है । जब वन और उसमें उगनेवाली झाड़ियों को काट डालोगे, तभी तुम निर्वाणपद पाओगे।

१३७. आत्मस्नेह को इस तरह काटकर फेंक दो जिस तरह लोग शरद ऋतु के कुमुद को हाथ से तोड़ लेते हैं। शांति के मार्ग का आश्रय लो-यह बुद्ध द्वारा उपदिष्ट मार्ग है।

१३८. बुद्ध के निर्दिष्ट मार्ग पर वही चल सकता है, जो मन, वचन और काया को पापों से बचाता है।

१३९. यह ब्रह्मचर्य न तो आदर-सत्कार प्राप्त करने के लिए है, न

शील-सम्पत्ति या प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए है। यह ब्रह्मचर्य तो आत्यंतिक चित्त-विमुक्त अर्थात् निर्वाण-पद प्राप्त करने के लिए है। आत्यंतिक चित्त-विमुक्ति ही ब्रह्मचर्य का सार है, और यही ब्रह्मचर्य-व्रत का पर्यवसान भी है।

१४०. जिस श्रद्धालु गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग, ये चार गुण हैं, वह इस लोक से परलोक में जाकर शोक नहीं करता।

(बुद्धवाणी (सस्तासाहित्य मण्डल) से साभार)

अनोखी खेती

एक बार भगवान बुद्ध एक धनी के घर पर भिक्षा मांगने गये। धनी व्यक्ति ने कहा – भीख मांगते हो, काम काज क्यों नहीं करते, खेती बारी ही करो। भगवान बुद्ध ने मुस्कुरा कर कहा, खेती ही करता हूँ, दिन-रात करता हूँ और अनाज उगाता हूँ। उस धनी व्यक्ति ने पूछा, यदि तुम खेती करते हो तो तुम्हारे पास हल बैल कहाँ हैं, अन्न कहाँ है ?

भगवान बुद्ध ने कहा मैं अन्तःकरण में खेती करता हूँ। विवेक मेरा हल और संयम तथा वैराग्य मेरे बैल हैं। मैं प्रेम, ज्ञान और अहिंसा के बीज बोता हूं और पश्चात्ताप के जल से उन्हें सींचता हूं। सारी उपज मैं विश्व को बांट देता हूं, यही मेरी खेती है।

* *जिस प्रकार पुष्पों की राशि में से बहुत सी मालाएँ बनाई जा सकती हैं, उसी प्रकार संसार में जन्म लेने के बाद मनुष्य को चाहिए कि वह शुभ कर्मों की माला गूँथे।*

* *शुभ कर्म करने में जल्दी करे, पापों से मन को हटाये। शुभ कर्म में विलम्ब करने से मन पाप में प्रवृत्त होने लगता है।*

– धम्मपद

(६)

महावीर-वाणी

१. धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है। वह सबका कल्याणकर्ता है।

२. जो सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते अपना कार्य विवेकपूर्वक करता है, वह धार्मिक होता है।

३. अहिंसा, संयम, तप, स्वाध्याय, क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि अपनाने से आत्मा शुद्ध होती है।

४. मन रूपी जल जब निर्मल और स्थिर हो जाता है, तब उसमें आत्मा का दिव्य रूप झलकने लगता है।

५. क्रोध को क्षमा से जीतो। मान को विनय से जीतो। कपट को सरलता से जीतो। लोभ को संतोष से जीतो।

६. अल्पाहारी, अल्पभाषी, अल्पशायी, अल्प परिग्रही हिंसा आदि विकारों से विरत रहता है।

७. जो राग-द्वेष, मोह-मद आदि विकारों को जीत लेता है और निरंजन आत्मा का चिन्तन करता है, वह स्वयं ही आत्मा से परमात्मा बन जाता है।

८. आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता है।

९. अच्छे मार्ग पर चलने वाली आत्मा अपना मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाली आत्मा शत्रु। बुरे विचारों का दमन होने से इहलोक और परलोक में सुख मिलता है।

१०. आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी है, आत्मा ही स्वर्ग का नन्दन वन है, आत्मा ही इच्छापूर्ति करने वाली धरती की कामधेनु है। आत्मा को जानो।

११. आत्मा को जानने का साधन है: सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र।

१२. जो व्यक्ति आत्मा को नहीं जानता, वह यद्यपि क्रियाएं करता है, तब भी उसे सिद्धि नहीं मिलती।

१३. जो क्रोध, मान, भय, लोभ और पांच इन्द्रियों को जीत लेता है, वह आत्मजयी होता है।

१४. संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतने वाला "वीर" कहलाता है पर आत्मा को जीतने वाला "महावीर" होता है।

१५. नीरोगता सबसे बड़ा लाभ है। संतुष्ट रहना सबसे बड़ा धन है। विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है। निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

१६. उन व्यक्तियों का जीवन ही जीवन है, जो शीलवान हैं।

१७. दया के समान धर्म नहीं, अन्नदान के समान करुणा नहीं, सत्य के समान कीर्ति नहीं और शील के समान श्रृंगार नहीं है।

१८. जो दूसरों को सुख देता है, वह स्वयं भी सुख पाता है।

१९. जो दूसरों की सेवा करता है और सेवा धर्म का पालन करता है, उसे तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।

२०. सेवा करने से सज्जनों के कानों, नेत्रों, हृदय आदि को सुख देने वाली कीर्ति जगत में फैलती है और मैत्री-लाभ होता है।

२१. सबके प्रति मित्र भाव रखना ही अध्यात्म है।

२२. जब तक "मैं" और "मेरा" का बुखार चढ़ा हुआ है, तब तक शान्ति नहीं मिल सकती।

२३. चार दुर्लभ हैं : मनुष्यत्व, सही समझ, संयत वृत्ति और परमार्थ।

२४. चार आवश्यक हैं : दान, शील, तप और भाव।

२५. मनुष्य को जितना आनन्द सार्थक, हितकर, मधुर वचन प्रदान करते हैं, उतना शीतल जल, चन्दन, चन्द्रमा आदि भी नहीं पहुंचाते।

२६. सिर मुड़ा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। ओंकार जपने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। वन में रहने से कोई मुनि नहीं होता। कुश-चीवर धारण करने से कोई तपस्वी नहीं होता।

२७. समता धारण करने से श्रमण होता है। ब्रह्मचर्य धारण करने से ब्राह्मण होता है। ज्ञान अर्जित करने से मुनि होता है। तप करने से तापस होता है।

२८. यह अच्छी तरह जान लो कि न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र और न ही स्त्री, पुरुष या नपुंसक, मैं मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के कोई भेद-प्रभेद नहीं होते।

२९. ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर अन्य सब भाव परभाव हैं। इसलिए समस्त विकल्पों को छोड़कर शांति से शुद्ध आत्म स्वभाव का ध्यान करो।

३०. सत्पुरुष हिमालय पर्वत की तरह दूर से ही प्रकाशित रहते हैं। असत्पुरुष रात में फेंके गये वाण की भांति दिखाई नहीं देते।

३१. क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो।

३२. जिस काम को करना हो, उसे करने के लिए सर्वात्मभाव से जुट जाओ। ढीला-ढाला संन्यासी अधिक हलचल करता है, सिद्ध अविचल रहता है।

३३. जितने भी अर्हत्, सिद्ध-बुद्ध या तीर्थंकर हुए हैं या होंगे, उन सबका अधिष्ठान शान्ति है, वैसे ही जैसे कि प्राणियों का अधिष्ठान धरती है।

३४. सत्य महासमुद्र से भी अधिक गंभीर है।

३५. जितने भी अज्ञानी पुरुष हैं, वे सब दुःख के भागी हैं। उन्हें इस अनन्त संसार में बार-बार पीड़ित होना पड़ता है।

३६. जो सत्-असत् का विवेक करता है और अप्रमत्त तथा सतर्क रहता है, वह अज्ञान से मुक्त हो सकता है।

३७. ज्ञान मानवता का सार है और ज्ञान का सार है सही समझ।

३८. देवता और इन्द्र भी कभी काम-भोगों से तृप्त नहीं होते और असंतुष्ट रहते हैं तो अल्पायु में तुम तृप्त व संतुष्ट होने की आशा कैसे रख सकते हो? देवता भोग नहीं छोड़ सकते पर मनुष्य भोग छोड़कर योग ले सकता है।

३९. शरीर और इंद्रियों के क्लान्त होने पर भी जो समभाव रखता है, वह सन्मार्ग से विचलित नहीं होता।

४०. मैने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्धन और मोक्ष अपनी आत्मा पर ही निर्भर है।

४१. आसक्ति बन्धन है, अनासक्ति मोक्ष। अतः अपनी आत्माको सतत आसक्ति से बचाये रखना चाहिए।

४२. मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर भी धर्म का श्रवण दुर्लभ है, जिसे सुनकर जीव तप, क्षमा, अहिंसा, अपनाये।

४३. जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए चाहो और जो अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरों के लिए भी न चाहो-यही जिन-शासन है यानी जैन धर्म का सार है।

४४. आत्महित का अवसर मुश्किल से मिलता है।

४५. विद्वान पुरुष संसार परिभ्रमण के कारणों को भलीभांति समझ कर अपने आप सत्य की खोज और सब जीवों पर मैत्रीभाव रखे।

४६. जो व्यक्ति धर्म में दृढ़ निष्ठा रखता है, वही वास्तव में वीर है।

४७. जिसकी धर्माचरण में रुचि नहीं होती, वह न वीर है, न बलवान।

४८. जब तक जीवन है तब तक सद्‌गुणों की आराधना करते रहना चाहिए।

४९. सद्‌गुणी, सदाचारी व्यक्ति दिव्य गति को प्राप्त होता है।

५०. ज्ञानी और सदाचारी आत्माएं मृत्यु के समय भी त्रस्त नहीं होतीं।

५१. करोड़ों जन्मों के संचित कर्म तपस्या से क्षीण हो जाते हैं।

५२. कर्मों में बंधा हुआ जीव संसार में भ्रमण करता है।

५३. कर्म-बन्धन के कारण ढूंढ़ो, उनका छेदन करो और फिर तप आदि कर ऊर्ध्व गति को प्राप्त करो।

५४. जो रात, दिन बीत जाते हैं, वे कभी लौट कर नहीं आते। जो मनुष्य धर्म करता है, उसके रात दिन सफल और अधर्म करता है, उसके रात दिन निष्फल जाते हैं।

५५. सोने चांदी के कैलाश जितने बड़े असंख्य पर्वत हो जाएं, फिर भी लोभी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं।

५६. जिसने इच्छाओं को जीत लिया, वही जितेन्द्रिय है, जिन है, ज्ञानी है।

५७. ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान और मोह के विसर्जन से आत्मा शाश्वत सुखस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

५८. अज्ञान से मुक्त हो संयम-तप का आचरण करना तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है।

५९. जो अपने गुणों से प्रसिद्ध होता है, वह उत्तम है।

६०. जो अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह मध्यम है।

६१. जो अपनी ननिहाल के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह अधम है।

६२. जो अपने ससुराल के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह अधमाधम है।

६३. उत्तम मनुष्य मान चाहते हैं।

६४. मध्यम जन धन और मान चाहते हैं।

६५. अधम लोग धन चाहते हैं।

६६. अधमाधम मान खोकर भी धन चाहते हैं।

६७. पृथ्वी एक पौधा है। इस पर सोने के फूल लगे हैं जिन्हें पराक्रमी, विद्वान और सेवापरायण लोग ही चुन सकते हैं।

६८. आदमी छोटा है, पर उसका आत्म-विश्वास बड़ा होता है जो तीन प्रश्नों का सही उत्तर प्राप्त करता है -

(क) क्या मैं अपने श्रम की रोटी खाता हूँ ?

(ख) क्या मेरे जीवन व्यवहार में मितव्ययिता है ?

(ग) क्या मैं असमर्थ भाइयों का सहयोग कर सामाजिक ऋण चुकाता हूँ ?

६९. संयमः खलु जीवनम् - संयम ही जीवन है।

७०. जप और पूजा वैयक्तिक धर्म है। व्रत व्यक्तिगत है और सामाजिक धर्म भी है।

७१. जिसका हृदय पवित्र नहीं, वह धार्मिक नहीं हो सकता।

□□□

(७)

बाइबिल का संदेश

१. सत्य प्रभु के नाम की स्तुति करें, क्योकि केवल प्रभु का नाम महान है, उसकी महिमा पृथ्वी और आकाश के ऊपर है।

२. बुद्धि सड़क पर पुकार रही है, चौराहे पर उसकी आवाज गूँज रही है-ओ अज्ञानियों, कब तक तुम अज्ञान को गले लगाये रखोगे? ज्ञान की हँसी उड़ाने वालो, कब तक तुम ज्ञान की हँसी उड़ाते रहोगे? ओ मूर्खों, तुम कब तक ज्ञान से बैर रखोगे ?...तुमने मेरी चेतावनी को अनसुना किया, अतः जब तुम पर विपत्ति आएगी, तब मैं हँसूँगी। ..तुम मुझे पुकारोगे, पर मैं तुम्हें उत्तर नहीं दूँगी। तुम मुझे ढूँढने में जमीन आसमान एक कर दोगे किन्तु मुझे नहीं पा सकोगे, क्योंकि तुमने ज्ञान से बैर किया है। तुम्हें प्रभु की भक्ति करना पसंद नहीं है।

३. मेरे पुत्र, बुद्धि, ज्ञान, विवेक और समझ को ग्रहण करने से तू परायी स्त्री से बचा रहेगा।…उसका घर विनाश के गर्त में समा जाता है, उसकी गलियाँ अधोलोक की ओर जाती हैं।

४. मेरे पुत्र, करुणा और सच्चाई तुमसे कभी अलग न हो। तू उनको अपने गले का हार बनाना और उनको अपने हृदय-पटल पर लिख देना।

५. तू अपनी समझ का सहारा न लेना वरन् सम्पूर्ण हृदय से प्रभु पर भरोसा रखना। अपने सब कार्यों में तू प्रभु को स्मरण करना। वह तेरे कठिन मार्ग को सरल कर देगा।

६. अपनी ही दृष्टि में स्वयं को बुद्धिमान मत मानना। प्रभु से डरना और बुराई से मुँह फेरना। इससे तेरा शरीर सदा स्वस्थ रहेगा और तेरी हड्डियों में ताजगी बनी रहेगी।

७. अपनी धन-सम्पत्ति से प्रभु की महिमा करना। तू उसको अपनी फसल का प्रथम फल चढ़ाना। तब तेरे भंडार भरे पूरे रहेंगे। तेरे कुंडों

से अंगूर रस उमड़ता रहेगा।

८. मेरे पुत्र, प्रभु की ताड़ना की उपेक्षा मत करना। जब वह तुझे दंड दे, तब तू उससे घृणा मत करना। जैसे पिता अपने प्रिय पुत्र को ताड़ना देता है, वैसे ही प्रभु उस मनुष्य को ताड़ना देता है जिससे वह प्रेम करता है।

९. यदि तुझमें भला करने की सामर्थ्य है तो उनका भला अवश्य करना जो भलाई के योग्य हैं।

१०. यदि तेरे पास अपने पड़ोसी को देने के लिए कुछ है तो उससे यह मत कहना, "जाओ, कल फिर आना, मैं कल दूँगा।" अपने पड़ोसी के विरुद्ध कुचक्र मत रचना क्योंकि वह तुझ पर भरोसा करके तेरे पड़ोस में रहता है।

११. जिस मनुष्य ने तेरा अनिष्ट न किया हो, उससे अकारण मत लड़ना। हिंसा करने वाले व्यक्ति से ईर्ष्या मत करना और न उसके आचरण का अनुसरण करना।

१२. धार्मिक व्यक्ति का पथ मानो उषा-काल का प्रकाश है जो सबेरे से दोपहर तक अधिकाधिक बढ़ता जाता है, पर दुर्जन का मार्ग घोर अंधकारमय है। वे नहीं जानते कि किससे ठोकर खा रहे हैं।

१३. मेरे पुत्र, सबसे अधिक अपने हृदय की रक्षा कर क्योंकि जीवन के स्रोत उससे ही फूटते हैं। अपने मुँह से कुटिल बातें मत निकालना और न ओठों पर धोखा-धड़ी की बातें आने देना।

१४. ओ आलसी, तू कब तक पड़ा रहेगा ? तू अपनी नींद से कब जागेगा? यदि तू थोड़ा और सोयेगा, कुछ समय और झपकी लेगा, छाती पर हाथ रखे लेटा रहेगा तो यह निश्चय है कि पथ के लुटेरे की तरह गरीबी तुझ पर टूट पड़ेगी। सशस्त्र सैनिक के समान अभाव तुझ पर आक्रमण करेगा।

१५. छह बातों से प्रभु को बैर है, वरन् सात दुर्गुणों से वह घृणा करता है- घमण्ड से चढ़ी हुई आँखें, झूठ बोलने वाली जीभ, निर्दोष व्यक्ति

की हत्या करने वाले हाथ, कुचक्र रचने वाला हृदय, बुराई करने को दौड़ने वाले पैर, झूठ बोलने वाले साक्षी और भाइयों में झगड़ा करवाने वाला मनुष्य।

१६. धार्मिक मनुष्य के शब्द सर्वोत्तम चाँदी के सदृश बहुमूल्य होते हैं, पर दुर्जन के विचारों का कोई मूल्य नहीं होता। धार्मिक मनुष्य के शब्दों से अनेक लोगों का भला होता है, पर मूर्ख मनुष्य समझ के अभाव में मर जाता है।

१७. धार्मिक मनुष्य की आशाएँ पूर्ण होती हैं और वह आनंदित होता है पर दुर्जन की आशा निराशा में बदल जाती है।

१८. निष्कपट मनुष्य की रक्षा उसकी धार्मिकता करती है, पर विश्वासघाती मनुष्य अपनी वासना के जाल में फँस जाता है।

१६. पथ प्रदर्शन के अभाव में जाति का पतन हो जाता है। पर यदि उचित परामर्श देने वाले मंत्री बहुत हों तो राष्ट्र सुरक्षित रहता है।

२०. आलसी मनुष्य अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच पाता किंतु कठोर परिश्रम करने वाला व्यक्ति अपार धन-सम्पत्ति अर्जित कर लेता है।

२१. मनुष्यों के सामने उन्हें दिखाने के लिए धर्म-कार्य मत करो, नहीं तो अपने पिता से, जो स्वर्ग में है, कुछ फल न पाओगे।...जब तुम दान दो, तब तुम्हारा यह कार्य इतना गुप्त हो कि तुम्हारा बायाँ हाथ भी न जाने कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है।

२२. जब तुम प्रार्थना करो, तब पाखंडियों के सदृश मत बनो क्योंकि उन्हें सभा-गृहों और चौराहों पर खड़े होकर प्रार्थना करना प्रिय लगता है ताकि उन्हें लोगे देखें।...जब तुम प्रार्थना करो, तब अपने कमरे में जाओ, द्वार बन्द करो और अपने पिता से, जो गुप्त स्थान में है, प्रार्थना करो। और तुम्हारा पिता, जो गुप्त कार्य को भी देखता है, तुम्हें प्रतिफल देगा।...प्रार्थना करते समय बक-बक मत करो...क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे मांगने से पूर्व ही जानता है कि तुम्हें किन वस्तुओं की आवश्यकता है।

□□□

(८)

कुरान का संदेश

१. हर तरह की तारीफ अल्लाह के लिए ही है, जो सारे संसार का पालनहार है। वह निहायत दयावान और मेहरबान है। वही जज़ा (अन्तिम न्याय) के दिन का मालिक है। या अल्लाह, हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझसे ही मदद चाहते हैं। हमको सीधी राह चला, उन लोगों की राह, जो तुम्हारे कृपापात्र रहे।

२. अपने पालनहार की इबादत करो, जिसने तुमको और उन लोगों को जो तुमसे पहले गुजरे हैं, पैदा किया। वही परवरदिगार है, जिसने तुम्हारे लिये जमीन का फर्श बनाया और आसमान की छत और आसमान से पानी बरसाकर उससे तुम्हारे खाने के लिए फल पैदा किए।

३. लोगों, क्योंकर तुम अल्लाह का इन्कार करते हो ? जब तुम बेजान थे तो उसने तुममें जान डाली, फिर वही तुमको मौत देगा। वही तुमको फिर जिलाएगा, फिर उसी की तरफ लौटाये जाओगे। वही है, जिसने तुम्हारे लिए धरती की सब चीजें पैदा की, फिर आसमान की तरफ ध्यान दिया, तो सात आसमान हमवार बना दिये। वह सर्वज्ञ है।

४. जो कुछ आसमानों और जमीन में है, सब अल्लाह की तस्बीह करते हैं और वही है जबरदस्त हिम्मतवाला। आसमानों और जमीन का राज्य उसी का है। वही जिलाता और मारता है और वह हर चीज पर समर्थ है। वही आदि है और वही अन्त है। वही जाहिर तथा वही छिपा हुआ है। वही सर्वज्ञ है।

५. जाने रहो कि यह जिन्दगी खेल-तमाशा और जाहिरी शोभा है। आपस में एक दूसरे पर बड़ाई जताना और माल, औलाद की बढ़ती की लालसा- इन सबकी मिसाल वैसी ही है जैसे वारिश में काश्तकार हरी-भरी खेती को देखकर खुशियाँ मनाने लगते हैं, फिर वह जोर पर आती है, फिर तू देखे कि फसल पीली हो जाती है और चूर-चूर

हो जाती है।

६. ईमान लाना और गुनाहों से तौबा करना उसी वक्त तक काम आता है, जब तक अल्लाह की नसीहत और हिदायत चलती रहती है। लेकिन जब गुनाहों का घड़ा भर जाता है और अल्लाह का अजाब फट पड़ता है और तब उसके खौफ व तबाही से बचने के लिए जो ईमान लाने के लिए दौड़ने व चिल्लाने लगते हैं, उनकी वह पुकार व ईमान लाना अकारण होता है। यह अल्लाह की सनातन रीति है।

७. बुरा बर्ताव करने वाले के साथ भलाई करना बड़े सब्र की बात है। हर किसी के वश का नहीं। लेकिन जो ऐसे महान होते हैं, उनके दुश्मन भी गाढ़े दोस्त हो जाते हैं।

८. इन्सान का जिस्म पाकर कोई तैश या खता से खाली नहीं। बड़ी से बड़ी हस्ती भी शैतान की गुमराही में फँस जाती है। होश आते ही उसको चाहिए कि अल्लाह से तौबा करे। वह रहीम जरूर बख्शेगा। लेकिन इसके यह माने नहीं कि इरादतन गुनाह इस भरोसे पर करो कि बाद को अल्लाह से तौबा माँग लेंगे। याद रखो, अल्लाह दिल के अन्दर तक की बात जानता, सुनता है।

९. हर आदमी अपनी कमाई के अंजाम से बँधा है।

१०. जितनी सृष्टि इस जमीन पर है, सब मिटने वाली है। सिर्फ तुम्हारे परवरदिगार की जात बाकी रह जायगी जो साहिबे जलालो अजमत (महामहिमामय) है। जो कोई आसमानों में और जमीन में हैं, उसी से माँगते हैं। वह हर रोज एक निराली शान में है। फिर तुम परवरदिगार की कौन-कौन सी निअमतों को झुठलाओगे ?

११. कयामत के दिन लोगों को तीन किस्मों में बाँटा जायगा- (१) वह जो दुनिया में ईमान तथा नेकदारी में अव्वल रहे। वह अल्लाह के सबसे समीपी बंदे होंगे। (२) आम ईमान वाले (दाहिने हाथ वाले) और (३)

अज़ाब में पड़ने वाले अधर्मी (बायें हाथ वाले) दुनिया के बहुत से ऊँचे लोग तीसरे दर्जे में और बहुत से अदना आदमी पहले व दूसरे दर्जों में अपने कर्मों के अनुसार होंगे।

१२. धन-दौलत तुमसे एक दिन छूट जायगी और फिर अल्लाह ही उसका अधिकारी होगा और वह जिसे चाहे उस माल का मालिक बनाये। तो फिर खर्च क्यों नही करते।

१३. जो कोई अपना धन अल्लाह की राह में देता है उसको अल्लाह उसके दिये हुए धन से दूना अच्छा बदला देता है। यह दूना बदला सूद नहीं बल्कि अल्लाह की ओर से इनाम है।

१४. दुनिया में जो कुछ हमें मिला है, उसके हम मालिक नहीं, सिर्फ वह हमारे पास अमानत है और अल्लाह के बताये रास्ते में ही उसका इस्तेमाल या खर्च करना वाजिब है।

१५. जो जानते हैं कि तुच्छ मिट्टी के पुतले हैं फिर भी घमण्ड में इतराते-अँकड़ते हैं, और मेरी कुदरत और सामर्थ्य से इन्कार करते हैं, वे जन्नत के अधिकारी कहाँ ?

१६. अल्लाह ब्याज (की बरकत) को मिटाता है और खैरात (की बरकत) को बढ़ाता है।...बेशक जो लोग ईमान लाये, नेक काम किये, नमाज कायम किये और जकात देते रहे, अल्लाह के प्रिय रहे।

१७. न तुम किसी पर जुल्म करो और न तुम पर कोई जुल्म करने पाये।

१८. बेशक दीन (धर्म) तो अल्लाह के नजदीक इस्लाम (आत्मसमर्पण) ही है।

१९. नेकी और परहेजगारी में एक दूसरे के मददगार हो और गुनाह और ज्यादती में एक दूसरे के मददगार न बनो। अल्लाह से डरो क्योंकि अल्लाह का अजाब (दण्ड) सख़्त है।

❑❑❑

(६)

चाणक्यनीति

१. दुष्टा पत्नी, शठ मित्र, प्रत्युत्तर करने वाले सेवक, तथा सर्पयुक्त घर में वास निस्संदेह मृत्युतुल्य होता है।

२. धनी, वेदविद्, राजा, नदी और पांचवें वैद्य, ये जहाँ न हों, वहाँ एक दिन भी रहने लायक नहीं है।

३. नदियों, शस्त्रधारियों, नाखून तथा सींग वाले प्राणियों, स्त्रियों और राजकुलों में विश्वास नहीं करना चाहिए।

४. वे माता और पिता बैरी हैं जिन्होंने बालक को सम्यक् शिक्षा नहीं दी। सम्यक् शिक्षा के अभाव में मनुष्य सभा के बीच उसी प्रकार शोभित नहीं होता जिस प्रकार हंसों के बीच बगुला।

५. अति रूप के कारण सीता, अति गर्व के कारण रावण तथा अतिदान के कारण बलि विपत्ति में पड़े, अतः अति सर्वत्र त्याज्य है।

६. बुरे स्थान में आवास, कुलहीन की सेवा, कुभोजन, क्रोधिनी पत्नी, मूर्ख पुत्र तथा विधवा कन्या बिना अग्नि के शरीर को जलाने वाले हैं।

७. पुत्ररहित गृह, बांधव रहित दिशा तथा मूर्ख का हृदय ये शून्य हैं किंतु दरिद्रता सर्वशून्य है।

८. मूर्ख पंडित से, निर्धन धनिक से, व्यभिचारिणी कुलीना स्त्री से तथा अभागे भाग्यशाली से ईर्ष्या रखते हैं।

९. आलस्य से विद्या, तथा दूसरे के हाथ चले जाने से धन नष्ट हो जाता है। अपूर्ण बीज से खेत तथा नायकरहित सेना नष्ट हो जाती है।

१०. काम के समान व्याधि, मोह के समान शत्रु, क्रोध के समान अग्नि तथा ज्ञान से बढ़कर सुख दूसरा नहीं है।

११. प्रवास में विद्या, घर में पत्नी, रोग में औषधि तथा मरणशील के लिए धर्म ही मित्र है।

१२. समुद्र के लिए वर्षा की बूंदों का, तृप्त व्यक्ति के लिए भोजन का, धनाढ्य को प्राप्त धन का तथा दिन के समय दीपक का विशेष महत्व नहीं है।

१३. सत्य पर पृथ्वी टिकी है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु चलता है, सभी सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं।

१४. जन्मदाता, उपनयन में मंत्रदाता, विद्यादाता, अन्नदाता तथा भय के समय रक्षादाता ये पांच पिता बतलाये गये हैं।

१५. राजपत्नी, गुरुपत्नी, मित्रपत्नी, पत्नी की माता और अपनी माता ये पांच माताएँ कही गई हैं।

१६. कार्य कितना बड़ा हो, मनुष्य उसे करना चाहता हो तो सिंह की तरह दृढ़ निश्चय के साथ आरंभ करे और पूरा करके छोड़े।

१७. चंतुर व्यक्ति को बगुले की तरह अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हुए देश, काल और बल का ज्ञान करके सभी कार्यों का साधन करना चाहिए।

१८. शांति के समान कोई तपस्या नहीं, संतोष से बढ़कर सुख नहीं, तृष्णा से बढ़कर कोई व्याधि नहीं और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

१९. गुण से रूप की, शील से कुल की, सिद्धि से विद्या की तथा भोग से धन की शोभा होती है।

२०. भूमिगत जल, पतिव्रता नारी, कल्याणकारी राजा और संतोषी ब्राह्मण पवित्र होते हैं।

२१. असंतुष्ट ब्राह्मण, संतुष्ट राजा, लज्जालु वेश्या और निर्लज्ज कुलांगना नाश को प्राप्त होते हैं।

२२. सर्प, राजा, सिंह, बिच्छी, बालक, कुत्ता और मूर्ख ये सात सोये हों तो उन्हें जगाना नहीं चाहिए।

२३. लोभियों के लिए याचक, मूर्खों के लिए ज्ञानदाता, व्याभिचारिणी स्त्री के लिए पति तथा चोरों के लिए चन्द्रमा शत्रु लगते हैं।

२४. बाघों और हाथियों से भरे वन में वृक्षों के नीचे पत्तों और फलों द्वारा या केवल जल पीकर निर्वाह करना, घास-पात की शैया पर विश्राम तथा फटे पुराने चीथड़े लपेटकर रह लेना अच्छा है किंतु बंधुओं के बीच धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं।

२५. माता लक्ष्मी, पिता विष्णु और बांधव विष्णुभक्त स्वरूप हों तो ऐसे व्यक्ति के लिए अपने देश में ही तीनों लोकों का सुख प्राप्त है।

२६. बीती बात के लिए शोक तथा भविष्य के लिए निरर्थक चिंता नहीं करनी चाहिए। पंडित लोग वर्तमान के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं।

२७. जिसे न पहले किसी ने बनाया, न देखा और न सुना, ऐसे स्वर्णमृग के लिए राम जैसे पुरुषोत्तम के मन में तृष्णा जग गई तो इससे यही सिद्ध होता है कि विनाशकाल में बुद्धि विपरीत हो जाती है।

२८. अन्न और जल के समान दान, द्वादशी के समान तिथि, गायत्री के समान मंत्र तथा माता से बढ़कर देवता कोई नहीं है।

२९. राजा का चित्त, कृपण का धन, दुष्टों का मनोरथ, स्त्रियों का चरित्र तथा पुरुषों का भाग्य देवता भी नहीं जान सकते, मनुष्यों की तो बात ही क्या है ?

३०. जिस प्रकार आग से जलता हुआ एक सूखा वृक्ष अपने साथ साथ सारे वन को जला देता है, उसी प्रकार एक कुपुत्र सारे कुल के संताप और विनाश का कारण होता है।

३१. जिस प्रकार चंद्रमा से रात की शोभा होती है, उसी प्रकार एक ही सुशील एवं विद्वान पुत्र से सारा कुल आह्लादित हो जाता है।

३२. जो सामने तो मीठी-मीठी बातें करे और पीछे पीछे काम बिगाड़े, उसको उस घड़े की भाँति त्याग देना चाहिए जिसके मुख पर तो दूध किंतु भीतर विष भरा हुआ है।

३३. उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजद्वार तथा स्मशान में जो साथ दे वही सच्चा मित्र है।

३४. जिस प्रकार घिसने, काटने, तपाने और पीटने - चार उपायों से सोने की परीक्षा होती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण, और कर्म इन चारों से मनुष्य की परीक्षा होती है।

□□□

(१०)

संत कबीर की वाणी

१. जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तो को फूल को फूल है, वाको है तिरसूल।।

२. पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।

३. झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद।।

४. माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुनि लियो, काल्हि हमारो बार।।

५. गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपनों गोबिन्द दिया मिलाय।।

६. जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं।।

७. कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की सोय।
कथनी तज करनी करै, विष तैं अमृत होय।।

८. सपने में साँईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मति सुपनाहै जाय।।

९. लघुता ते प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी सक्कर लै चली, हाथी के सिर धूरि।।

१०. तेरा साईं तुज्झ मैं ज्यों पुहुपन मैं बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूँढै घास।।

११. जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।

१२. नैना अन्दर आव तू. नैन झाँपि तोंहि लेव।
ना मैं देखूँ और कौ, ना तोंहि देखनं देंव।।

१३. दुख में सुमरण सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरण करै, दुख काहे को होय।।

१४. एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचै मूल को, फूलै फलै अघाय।।

१५. माटी कहै कुम्हार से, क्या रूंधै तू मोहिं।
एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूंधूंगी तोहिं।।

१६. बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजूँ आपना, मुझसा बुरा न कोय।।

१७ काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करैगो कब।।

१८. काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करन्त।
ज्यौं ज्यौं नर निधरक फिरै, त्यों त्यों काल हसन्त।।

१९. जाको राखै साइयां, मार सकै नहिं कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय।।

२०. चाह घटी चिन्ता गई, मनवा बे परवाह।
जिनको कछू न चाहिये, ते साहनपति साह।।

२१. चलन चलन सब कोई कहै, पहुंचे बिरला कोय।
एक कंचन एक कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय।।

२२. बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ै खाल।
जो नर येहि भक्षण करे, तिनको कौन हवाल।।

२३. कबीर कमाई हाथकी, कभी न निरफल जाय।
बोवे पेड़ करीर के, आम कहां से खाय।।

२४. कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंकै आपनो, चलै हमारे साथ।।

(११)

संत तुकाराम की वाणी

१. लघुता अच्छी, क्योंकि उस हालत में कोई बैर नहीं करता।

२. इस प्रपंच-संगति में जो तेरी आयु वृथा गई, उस हानि को तू कैसे पूरा करेगा ? जिन स्त्री-पुत्रों के मोह में तू फंसा हुआ है, वे तुझे प्रयाण के समय छोड़ देंगे। जो उत्तम लाभ है, उसी का विचार कर।

३. जिनके संसर्ग से ईश्वर प्रेम में वृद्धि हो, प्रेम हो तो दूना हो जाय, उन्हें मैं सन्त कहता हूँ, और जिनके संसर्ग में आने से ईश-प्रेम घट जाय, उन्हें मैं दुर्जन और कल-मुख कहता हूँ।

४. अगर तू इन्द्रियों का दमन नहीं कर पाया तो तुमने यह परमार्थ की दुकान क्यों लगा रखी है। बाहर से धुला हुआ, अन्दर से मलिन, इस तरह अन्त में तेरे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा।

५. परस्त्री को माँ के समान मानने में क्या खर्च होता है? दूसरे की निन्दा न की और दूसरे के द्रव्य की अभिलाषा न की तो उसमें तुम्हारा क्या खर्च होता है? राम राम कहने से तुमको क्या श्रम होता है? सच बोलने से तुम को क्या कष्ट होता है? केवल इतने से ही प्रभु की प्राप्ति होती है और कोई झंझट करने की आवश्यकता ही नहीं है।

६. जाति और कुल की देन की कुछ कीमत नहीं होती। जो कोई उसका अनन्य भक्त होकर रहता है, उसके साथ वह भी अनन्य भाव से वर्तन करता है।

७. जो देव सर्वव्यापक है वह मेरे हृदय में नहीं, यह कैसे हो सकता है?

८. देवप्रेम मन में न हो तो न सही मगर वाणी में उसका नाम हमेशा रहने दो। उसके चिन्तन में और नाम संकीर्तन में जीवन बीते। चाहे नाम दंभ से ही क्यों न ले, मगर ले, कभी-न-कभी भगवान सुबुद्धि देगा ही।

९. देव अपने एकनिष्ठ भक्त का भार अपने सिर पर लेकर उसके योग-क्षेम की चिन्ता रखता है। अगर भक्त मार्ग से भटका, तो वह उसका हाथ

पकड़ कर सरल मार्ग दिखा देता है।

१०. देव ने जब कुछ करना ठान लिया, तो फिर वहां किसी का वश नहीं चल सकता। हरिश्चन्द्र और तारामती से डोम के घर पानी भरवाया। भगवान पांडवों के सहायक थे, फिर भी उनका राज्य नष्ट करा दिया। इसीलिए निश्चल रहकर देखिये कि सहज ही क्या-क्या होता है।

११. कभी कोई मां किसी वस्तु को फेंकने का ढोंग करके बगल में छिपा लेती है, वैसा ही खेल देव भी तेरे साथ लाड़ लड़ाता हुआ खेल रहा है।

१२. संतों का अतिक्रम करके देव पूजा करना अधर्म है। (ऐसे पूजकों द्वारा) देव को सुनाए गए मंत्र और चढ़ाए गये पुष्प देव के सिर पर मारे गए पत्थरों के समान हैं।

१३. परमार्थ की साधना करते समय कोई दूसरे की बाट न देखे, न दूसरे के लिए खड़ा रहे।

१४. पहले बीज बोना, फिर सींचना, फिर ईश्वर पर भरोसा रखकर जो फल मिले, उसे लेना। ऐसा न करके जो कोई फल की आशा रख कर ईश्वर की मिन्नतें करते रहते हैं, वे आखिरकार ठगे जायंगे और कुछ न पायेंगे।

१५. ऐ मेरे अधीर मन, मैं तुझसे एक बात पूछता हूँ। तू निरंतर दुश्चिंत क्यों रहता है? खाने की चिन्ता करता है? तुझसे अच्छे तो पक्षी हैं। चातक पक्षी पृथ्वी का जल नहीं पीता, इसलिए उसके लिए बादल गर्मी में वर्षा करते हैं। कितने ही जीव पानी और वन में हैं, उनके पास कोई संचय है क्या?

१६. मंजीरे होते हैं दो परन्तु उनमें ध्वनि तो एक ही उत्पन्न होती है। उसी प्रकार सगुण और निर्गुण में कोई अन्तर नहीं है।

१७. जो मुंह से ब्रह्म ज्ञान बोलता है और मन में धन की और मान की इच्छा रखता है, ऐसे की सेवा करने से जीवन को क्या सुख होगा?

अन्य

१. यदि आप थोड़े में ही अपना काम अच्छी तरह चलाना चाहते हैं तो किसी चीज में पैसा लगाने से पहले स्वयं अपने से दो प्रश्न पूछ लिया करें। पहला, क्या मुझे सचमुच इस चीज की जरूरत है ? दूसरा, क्या इसके बिना भी मेरा काम चल सकता है ?

२. भला दिल कौन देखता है ? कौन देख सकता है ? भला बर्ताव सब देखते हैं और सब देख सकते हैं ।

३. बदला लेने की भावना नहीं रखनी चाहिए। आगे वाले के सामने जैसी परिस्थिति थी उसने उस वक्त वैसा किया। उसको भूल जाना चाहिए।

४. ऐसी कोई बात किसी आदमी के बारे में मत कहो जिसे तुम उसके मुंह पर नहीं कह सकते।

५. विनोद बातचीत का नमक है, भोजन नहीं।

६. निरंतर सफलता हमें संसार का केवल एक ही भाग दिखाती है, विपत्ति हमें चित्र का दूसरा भाग भी दिखाती है।

७. विरोधी पक्ष का प्राणी कभी भलाई नहीं कर सकता। पानी कितना ही गरम क्यों न हो, आग को बुझा ही देता है।

८. बुढ़ापा में आराम करने की जरूरत रहती है, यह धारणा ही गलत है। यदि जीवन में ठीक तरह से रहे तो बुढ़ापा में भी बराबर काम करते रहेंगे, बल्कि अधिक अनुभवी हो जाने से बुढ़ापे में ज्यादा उपयोगी साबित होंगे।

६. थोड़ा पढ़ना, अधिक सोचना, कम बोलना, अधिक सुनना यही बुद्धिमान बनने के उपाय हैं।

१०. भेदी बात मत बोलो, सोच समझ कर बोलो। काने को काना, अन्धे को अन्धा, चोर को चोर इत्यादि सम्बोधनों द्वारा मत पुकारो।

११. भाषण करने की योग्यता, प्रसिद्धि प्राप्त करने का सीधा मार्ग है। इससे मनुष्य लोगों के सामने आ जाता है और साधारण जनता से ऊपर उठ जाता है।

(१२)

संत रविदास की वाणी

(१)

अब कैसे छूटे राम-नाम रट लागी।

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरे दिन राती।।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

(२)

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।
गावनहार को निकट बताऊँ।।

जबलगि है या तन की आसा, तब लग करै पुकारा।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनिहारा।
जब लग नदी न समुद्र समावै, तब लग बढ़ै हँकारा।
जब मन मिल्यौ रामसागर सो, तब यह मिटी पुकारा।।
जब लगि भगति मुकुति की आसा, परम तत्त्व सुनि गावै।
जहँ जहँ आस धरत है यह मन, तहँ तहँ कछू न पावै।।
छाड़ै आस निरास परम पद, तब सुख सति कर होई।
कह रैदास आसो और करत है, परम तत्व अब सोई।।

(३)

ऐसा कछु अनभौ कहत न आवै।
साहिब मिलै त को बिलगावै।।

सब में हरि है, हरि में सब है, हरि अपनो जिन जाना।
साखी नहीं और कोइ दूसर जाननहार सयाना।।
बाजीगर सों राचि रहा, बाजी का मरम न जाना।
बाजी झूठ, साँच बाजीगर, जाना मन पतिआना।

मन थिर होइ तो कोइ न सूझै, जानै जाननिहारा।
कह रैदास बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप सँभारा।।

(४)

हरि सा हीरा छाँड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाखै रैदास।।

(५)

राम बिन संसय गाँठ न छूटै।
काम किरोध लोभ मद माया, इन पंचनि मिलि लूटै।।
हम बड़ कवि कुलीन हम पंडित, हम जोगी संन्यासी।
ज्ञानी गुनी सूर हम दाता, याहु कहे मति नासी।।
पढ़े - गुने कछु समुझि न परई जौ लौं भाव न दरसै।
लोहा हिरन होइ धौं कैसे, जौं पारस नहिं परसै।।
कह रैदास और असमुझ सी, चालि परे भ्रम भोरे।
एक अधार नाम नरहरि को, जिवन प्रानधन मोरे।।

(६)

थोथो जनि पछोरो रे कोई।
जोइ रे पछोरो जामें नाज कन कोई।।
थोथी काया, थोथी माया।
थोथा हरि बिन जनम गँवाया।।
थोथा पंडित थोथी बानी।
थोथी हरि बिन सबै कहानी।।
थोथा मंदिर भोग विलासा।
थोथी आन देव की आसा।।
साचा सुमिरन नाम बिसासा।
मन बच कर्म कहै रैदासा।।

□□□

(१३)

गोस्वामी तुलसीदास की वाणी

जहां राम तहां काम नहिं, काम जहां नहिं राम।
कहु तुलसी कैसे रहैं, रवि रजनी इक ठाम।। १ ।।
तुलसी अपने राम को, रीझ भजो या खीज।
खेत पड़े पर जामिहैं, उल्टो सीधो बीज।। २ ।।
तुलसी पर घर जायके, दुख न कहिये रोय।
भरम गमावै आपनो, मेट सके ना कोय।। ३ ।।
गरज परै कछु और है, गरज सरै कछु और।
तुलसी भांवर के परे, नदी सिरावत मौर ।। ४ ।।
तुलसी या जग आयके, सबसे मिलिये धाय।
ना जाने किस भेष में, नारायण मिल जाय।। ५ ।।
आये को आदर करै, चलत नवावै सीस।
तुलसी ऐसे मित्र से, मिलिये विश्वा बीस।। ६ ।।
तुलसी या जग के विषय, चार बात हैं सार।
साधु मिलन औ हरि भजन, दया दीन उपकार ।। ७ ।।
तुलसी पिछले पुन्य बिन, हरि चरचा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर से, भोजन की रुचि जाय।। ८ ।।
तुलसी हाय गरीब की, प्रभु से सही न जाय।
मुये चाम की फूंक से, लोह भस्म हो जाय।। ९ ।।
राम नाम मणि दीप धरि, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी बाहर भीतरे, जो चाहत उजियार ।। ११ ।।
तुलसी जो पै राम से, नाहिन सहज सनेह।
मूंड मुंड़ायो वृथा ही, भांड भयो तजि गेह ।। १२ ।।

रामचरित मानस से

सत्संग

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।।
बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निजगुन अनुसरहीं।।

x x x x

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।
गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।।

भलो भलाइहि पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच।।
जड़ चेतन गुण दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।

x x x x

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुवस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलक्षण लोग।।

नाम - माहात्म्य

नाम प्रभाउ जान शिव नीके। कालकूट फल दीन्ह अमी के।
मंत्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।।

वर्षाऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादौं मास।।
एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरनन पर जोय।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोय।।

x x x x

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
भंजेउ राम आप भव चापू। भव-भय भंजन नाम प्रतापू।।
ध्यान प्रथम जुग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे।
नहिं कलिकर्म न धर्म विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू।।

व्यावहारिक शिक्षा

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिनु बोले न संदेहा।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्यान न होई।।
जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब ते कठिन जाति अवमाना।

x x x x

जो घर बर कुल होइ अनूपा। करिय बिबाह सुता अनुरूपा।।

x x x x

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।।
तुलसी जस भवितव्यता, तैसेहि मिलै सहाइ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाइ।।

x x x x

मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन सन करवावहिं सेवा।
जिनके यह आचरण भवानी। ते जानौ निसिचर सम प्रानी।।

x x x x

जिनके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।।

x x x x

ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती।।

x x x x

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।।

x x x x

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिन तियहिं तरणिहु ते ताते।।
तन धन धाम धरंणि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू।।
भोग रोग सम भूषण भारू। यम यातना सरिस संसारू।।
जिय बिन देह नदी बिन बारी। तैसेहिं नाथ पुरुष बिनु नारी।।

x x x x

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

x x x x

संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।।

शोचनीय कौन ?

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना।।
सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय रस लीना।।
सोचिय वैश्य कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिवभक्त सुजानू।
सोचिय सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ज्ञान गुमानी।।
सोचिय पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।।
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।।
सोचिय गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंचरत विगत बिवेक विराग।।

सफलता का मंत्र

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुद्धि शक्ति प्रचंडा। बर विज्ञान कठिन कोदंडा।।
संयम नियम सिलीमुख नाना। अंमल अचल मन त्रोण समाना।।
कवंच अभेद विप्र पद पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कह न, कतहुँ रिपु ताके।।
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।।

□□□

(१४)

गुरु नानकदेव की वाणी

(१)

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिया भाउ अपारु।
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु।
फेरि कि अगौ रखीए जितू दिसै दरबारु।।
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु सुणि धरे पिआरु।
अमृत बेला सचु नाउ बड़ियाई बीचारु।।
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु।
नानक एवै जाणीए समु आये सचिआरु।।

वह स्वामी सत्य है, उसका नाम भी सत्य है। उसका बखान करने के भाव या ढंग अनगिनत हैं। लोग निवेदन करते हैं और माँगते है कि 'स्वामी, तू हमें दे दे। और वह दाता उन्हें देता है। फिर क्या उसके आगे रखें जिससे उसका दरबार दीख पड़े और इस मुख से हम क्या बोल बोलें कि जिन्हें सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे ? अमृत बेला में, मंगलमय प्रभातकाल में उसके सत्यनाम का और उसकी महिमा का विचार करो, स्मरण करो।

कर्मों के अनुसार चोला तो बदल लिया जाता है किन्तु मोक्ष का द्वार उसकी दया से ही खुलता है।

नानक कहते हैं – यों जानो तुम कि वह सत्य रूप प्रभु आप ही सब कुछ है।

(२)

जो जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ।
नवा खंडा विचि जाणीए नालि चलै सभु कोइ।।
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुच्छै कोइ।
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ।।
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे।
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवँतिया गुण दे।।
तेहा कोई न सुज्झई जि तिसु गुणु कोई करे।

मनुष्य यदि चारों युग जीये, या इससे भी दसगुनी उसकी आयु हो जाय और नवों खंडों में वह विख्यात हो जाय, सभी लोग उसके साथ चलने लगें, दुनिया भर के लोग उसे अच्छा कहें और उसके यश का बखान करें, पर यदि परमात्मा ने उस पर कृपादृष्टि नहीं की, तो कोई उसकी बात भी पूछने वाला नहीं, उसकी कुछ भी कीमत नहीं। तब वह कीट से भी तुच्छ माना जायगा। दोषी भी उस पर दोषारोप करेंगे। नानक कहते हैं - वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है और जो गुणी है, उसे और भी गुण बख्श देता है। पर ऐसा कोई दृष्टि में नहीं आता जो परमात्मा को गुण दे सके।

(३)

भरीए हथ्थु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।
मूत पलीती कपड़ू होइ। दे साबुणु लईए ओहु धोइ।।
भरीए मति पापा कै संगि। ओहु धोवै नावै कै रंगि।।
पुनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु।।
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकुमी आवहु जाहु।।

जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग धूल से सन जाते हैं तब वे पानी से धोने से साफ हो जाते हैं। धूल से जब कपड़े गंदे हो जाते हैं, तब साबुन लगाकर उन्हें धो लेते हैं। ऐसे ही यदि हमारा मन पापों से मलिन हो जाय तो नाम के प्रभाव से स्वच्छ हो सकता है।

केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी। किंतु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो, तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

आप ही तुम जैसा बोते हो, वैसा खाते हो। नानक कहते हैं - यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही होता है।

(४)

सूतकु किउ करि रखीए, सूतकु पवै रसोइ।
नानक सूतकु एव न उतरै, गिआनु उतारै धोइ।।
मन का सूतक लोभ है, जिह्वा सूतक कूड़ु।
अखी सूतकु वेखणा, परत्रिय पर धन रूप।।
कंनी सूतक कंनि पै, लाइत बारी खाहिं।
नानक हंसा आदमी बंधे जमपुर जाहिं।।

केवल बाह्य शौच विचार से क्या होगा? अशौच तो हमारी रसोईं में घुसा हुआ है (क्योंकि जो लकड़ी हम जलाते हैं उसमें कीड़ा है।) अपवित्रता तो ज्ञान से ही दूर हो सकती है। मन की अपवित्रता लोभ है। परायी स्त्री तथा पराये धन का दर्शन आँख का अशौच है। परनिन्दा सुनना कान का अशौच है। यदि शौच का विचार हो तो हृदय को अपवित्र करने वाली इन बातों से बचे, जिनके कारण यह अमर जीव अकारण यमलोक का वासी बना हुआ है।

❑❑❑

(१५)

रहीम की वाणी

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नहीं गर्वको लेश।
भार धरे संसारको, तऊ कहावत शेष।। १ ।।
धूरि धरत निज सीस पर, कह रहीम केहि काज।
जा रज मुनि पतनी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।। २ ।।
बड़े जनन में द्रवन की, स्वाभाविक ही बान।
हरि हाथी से कब हुती, कह रहीम पहिचान।। ३ ।।
बड़े काम छोटे करैं, तउ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमान को, गिरधर कहै न कोय।। ४ ।।
जो गरीब कर हित करैं, धनि रहीम वे लोग।
कहां सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।। ५ ।।
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट हो जात।
नारायण हूँ को भयो, बावन आंगुर गात।। ६ ।।
तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पिवै न पान।
कह रहीम पर काज हित, सम्पति सँचहि सुजान।। ७ ।।
रहिमन नीच प्रसंग ते, लगै कलंक न काहि।
दध कलारी कर गहे, मदहि कहैं सब ताहि।। ८ ।।
बिगरा रहिमन आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, मिट्यो न बावन नाम।। ९ ।।
दीन सबनको लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीन बन्धु सम होय।। १० ।।
क्षमा बड़न को होत है, छोटन को उत्पात।
का रहीम प्रभु को घट्यो, भृगु ने मारी लात।। ११ ।।
यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग।
बांटनवारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ।। १२ ।।

□□□

(१६)

कुछ प्रसिद्ध दोहे और पद

पावक चुगत चकोर नित, भस्म करन को अंग ।
हो विभूति शिव सिर चढ़ै, तब पावै शशि संग ।। १ ।।
जा जाके शरणन बसै, ताकी ताको लाज।
उल्टे जल मछली चढ़ै, थहे जात गजराज।। २ ।।
सोच करे सो शूर है, कर सोचे सो क्रूर।
सोच करे मुँह नूर है, कर सोचे मुँह धूर।। ३ ।।
पाप करे तो पा पकर, पा पकरे गति होय।
जो तूं पा पकरे नहीं, पड़ै नरक में रोय।। ४ ।।
सबसे दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो करदिया न होय।। ५ ।।
सदा सुहागन नित नई, अपनी रोटी दार।
दाम लगै औ दुख करै, मीठा औ परनार।। ६ ।।
बांस चढ़ी नटनी कहै, होत न नटियो कोय।
मैं नटकर नटनी भई, नटैं सो नटनी होय।। ७ ।।
खल औ कांटे को कह्यो, दो विधि सहज उपाय।
जूता से मुँह तोड़िबो, या दूरहिं ते जाय।। ८ ।।
मूरख को मुँह बंब है, निकसत वचन भुजंग।
ताकी औषधि मौन है, विष नहिं व्यापै अंग।। ९ ।।
सम्पति और शरीर सुख, विद्या औ वर नार।
निज पूरबले दत्त बिन, मांगे मिलै न चार।। १० ।।
भाग्यहीनको ना मिलै, भली वस्तु को भोग।
दाख पके मुंह पाक को, होय काक को रोग।। ११ ।।
मुख श्रवणन दृग नासिका, सबही के इक ठौर।
कहिबो सुनिबो देखिबो, चतुरन को कुछ और।। १२ ।।
बुधजन कबहुं न छांडिये, निज पुरखन की रीत।
बराबरी से कीजिये, बैर ब्याह औ प्रीत।। १३ ।।

पूत कपूत और कृपण नर, कपटी मित्र कुनारि।
चारहुं संगति शूलसम, बुधजन कहत विचारि।। १४ ।।
प्राण पुत्र दोऊ बड़े, युग चारों परमान।
सो नरेश दशरथ तजै, ववनन दीन्हे मान।। १५ ।।
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिलपर पड़त निशान।। १६ ।।
कौड़ी कौड़ी जोड़ के, निर्धन हो धनवान।
अक्षर अक्षर के पढ़े, मूरख होय सुजान।। १७ ।।
अमृत भरे तन मन वचन, निसदिन पर उपकार।
पर गुण मानत मेरु सम, बिरले जन संसार।। १८ ।।
उत्तम थल से वे सुजन, नीच नीच के वंश।
सेवत गीध मसान कूं, मानसरोवर हंस।। १६ ।।
खल जन को विद्या मिलै, दिन दिन बढ़ै गुमान।
बढ़ै गरल बहु व्यालको, यथा किये पय पान।। २० ।।
खल जनको कहिये नहीं, गूढ़ कबहुं करि मेल।
त्यों फैले संसार ज्यों, जल पर बूंद क तेल।। २१ ।।
चतुरंगिनी समेट दल, कायर नर भगि जात।
एक शूर सब सैन्य को, रोकि लेत घहरात।। २२ ।।
शूर समर करणी करहिं, कहि न जनावैं आप।
विद्यमान रण पाय रिपु, कायर करहिं प्रलाप।। २३ ।।
ढकै दोष जो परन के, बकै न मिथ्या बात।
संतोषी औ दया मन, सोई बड़ी कहात।। २४ ।।
जलचर थलचर व्योमचर, सब कहँ देत अहार।
मूरख चिंता जनि करे, निसदिन बारंबार।। २५ ।।
थकित होय सब अंग अरु, कंपन लागै गात।
तऊ न विद्या छांड़ि है, चतुर नरन को साथ।। २६ ।।
दलि औरनको दुख सदा, करत रहत उपकार।
धनि-२ उन नर तें जगत, दूजो कौन उदार।। २७ ।।

बड़े बड़न के भाग्य को, सहै न अधम गँवार।
शालतरू में गज बंधै, नहिं आकन की डार।। २८ ।।
भलो होय नहिं मारबो, काहू को जग माहिं।
भलो मारबो क्रोध को, ता सम रिपु जग नाहिं।। २६ ।।
रचैं शठहिं बुध आप सम, बचन सुनाय अनूप।
जैसे भृंगी कीट को, करै शनैः निजरूप।। ३० ।।
ऋणी पुरुष नहिं जांचिये, बरु निर्धन दातार।
तजिके कुसुमित आक अलि, करै कमल कृश प्यार।। ३१ ।।
प्रिय बासी शीतल हृदय, सुंदर सरल उदार।
जो मन ऐसा जगत में, ताको सबसे प्यार।। ३२ ।।
मिथ्या भाषी सांचहू, कहै न मानै कोय।
भांड़ पुकारै पीर बस, मिस समझे सब कोय।। ३३ ।।
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिल, जो सुख लव सत्संग।। ३४ ।।
कावा काको धन हरै, कोयल काकू देय।
मीठो शब्द सुनाय के, जग अपनो करि लेय।। ३५ ।।
मूरख वहां हि मानिये, जहां न पंडित होय।
रवि को जहां प्रकाश नहिं, दीप प्रकाशत लोय।। ३६ ।।
संगति से गुण होत है, कहैं लोग विद्वान।
गंधी और लुहारकी, देखो बैठ दुकान।। ३७ ।।
पंडित केर बराबरी, नहिं कर सकत नरेश।
गुण को आदर ठौर सब, राजा को निज देश।। ३८ ।।
संगति कीजे साधुकी, हरै औरकी व्याधि।
ओछी संगति नीच की, आठों प्रहर उपाधि।। ३६ ।।
राम नाम सम और नहिं, जाके मन विश्वास।
भई भक्त प्रह्लाद को, अमर होनकी आस।। ४० ।।
हरष उठै आदर करै, आवत ज्ञान अतीत।
"तुलसी" जब ही जानिये, परमेश्वर से प्रीत।। ४१ ।।

सन्त समागम हरि कथा, "तुलसी" दुर्लभ दोय।
सुत दारा औ लक्ष्मी, पापी के भी होय।। ४२ ।।
ज्ञान गरीबी हरि भजन, कोमल वचन अदोष।
"तुलसी" कबहुं न त्यागिये, क्षमा शील सन्तोष।। ४३ ।।
अपनी अपनी कहत हैं, यद्यपि सारे ग्रन्थ।
ज्ञानवान की दृष्टि में, सब सुरपुर के पंथ।। ४४ ।।
हरि हेरत हरि ही भयो, पायो नहिं विश्राम।
गुरु चरणन श्रद्धा किये, घरही निकसे राम।। ४५ ।।
गज मारे तो नाहिं डर, सिंह करै तनु भंग।
सुन्दर ऐसो दुख नहीं, जैसो दुर्जन संग।। ४६ ।।
अब पछताये होत क्या, शिथिल भई जब देह।
कूप खोदिबो है वृथा, जरन लग्यो जब गेह।। ४७ ।।
क्षमा खंग जिन कर लियो, कहा करै खल कोय।
बिन ईंधन में अग्नि पड़, आपहि शीतल होय।। ४८ ।।
पल पल छीजत देह यह, घटत घटत घट जाय।
वैरिन तृष्णा ना घटै, नित नूतन अधिकाय।। ४९ ।।
नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरणत युद्ध में, रस शृँगार न सुहात।। ५० ।।
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचार।
सबको मन हरषित करै, ज्यों विवाह में गार।। ५१ ।।
सबहि सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन प्रजारै अग्नि कहं, दीपहिं देत बुझाय।। ५२ ।।
मूरख गुण समझै नहीं, तौ न गुणी में चूक।
कहा भयो रविको विभव, देखै जो न उलूक।। ५३ ।।
कारज धीरे होय गो, जनि मन होहु अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचहु नीर।। ५४ ।।
क्यों ऐसो कीजे यतन, जाते काज न होय।
परवत पै खोदे कुवां, कैसे निकले तोय।। ५५ ।।

कुछ मारवाड़ी दोहे

चाकर चोर और पारधी, नाई कुत्ता बाज।
धाया काम करैं नहीं, भूखा सारे काज।। ५६ ।।
कांसी कुता कुमाण सा, बिन बोल्यां ककन्त।
सोन सूर औ सन्तजन, मधुराई बोलन्त।। ५७ ।।
केहरि केश भुजंग मणि पतिव्रता को गात।
सूरां सस्त्र और कृपण धन, जियत न आवैं हाथ।। ५८ ।।
वैद्य पसारी बिप्र वो, जोग्यारा को खाय।
ये तीनों ही नग्रके, चिन्तक अशुभ कहाय।। ५९ ।।
कागा कुता कुमानसा, तीनों एक निवास।
ज्यां ज्यां गैलां नीसरे, त्यां त्यां करैं बिनास।। ६० ।।
जाट जंवाई भाणजो, रैबारीर सुनार।
कदे न होसी आपना, कर देखो व्यवहार ।। ६१ ।।
इश्क मुश्क खांसी खुसक, खैर खून मद पान।
इता छिपाये ना छिपै, परगट होय निदान।। ६२ ।।
चकवा चातक सुघड़नर, नित प्रति रहत उदास।
खर घूघू मूरख नरां, सदा सुखी दिन रात।। ६३ ।।
जंगल जाट न छेड़िये, हाट्याँ बीच किराड़।
रांगड़ कदे न छेड़िये मारै तीखी धार।। ६४ ।।
सिंघ विषय सतपुरुष बैन, केल फलै इक बार।
तिरया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।। ६५ ।।
चलनो भलो न कोसको, बेटी भली न एक।
करजो भलो न बाप को, जो प्रभु राखै टेक।। ६६ ।।
राजा जोगी अगन जग, यांकी उलटी रीति।
माया मोह इनके नहीं, थोड़ी पालैं प्रीति।। ६७ ।।
जुर जाचक और पाहुनो, चौथो मांगनहार।
लांघन तीन करायदे, फिर ना आवै द्वार।। ६८ ।।

काचो पारो ब्रह्म अंस, कन्या को धन खाय।
कहे गुरू सुण चेलणा, जड़ा मूल से जाय।। ६९ ।।
आलस नींद किसान कूं, बीर बिगाड़ै हांसी।
मूल नसावे ब्याज बड़ो, खोवै चोर कूं खांसी।। ७० ।।
बिना कुचां की इसतरी, बिना मूँछको ज्वान।
ये तीनूं फीका लगैं, बिना सुपारी पान ।। ७१ ।।
मन मोती अरु दूधरस, याको यही सुभाव।
फाट्यां पाछे ना मिले, कोटिन करो उपाव।। ७२ ।।
शत्रू शस्त्र भुजंग अरु, रोग न समझो छोट।
सावधान यांसूं रहो, करें बखत पर चोट।। ७३ ।।
नाई बामन कूकरो, जात देख घुर्रायं।
यां तीन्यांकी नीतिया, हम इकला ही खायँ।। ७४ ।।

धर्म-सार (सत्यनारायन गोयनका)

धर्म न हिन्दू बौद्ध है, धर्म न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन।। ७५ ।।
धर्म धर्म तो सब कहे, पर समझे ना कोय।
शुद्ध चित्त का आचरण, सत्य धर्म है सोय।। ७६ ।।
कुदरत का कानून है, सब पर लागू होय।
विकृत मन व्याकुल रहे, निर्मल सुखिया होय।। ७७ ।।
द्वेष और दुर्भाव के, जब जब उठें विकार।
मैं भी दुखिया हो उठूं, दुखी करूं संसार।। ७८ ।।
मैं भी व्याकुल ना रहूं, जगत न व्याकुल होय।
जीवन जीने की कला, सत्य धर्म है सोय।। ७९ ।।
यही धर्म की परख है, यही धर्म का माप।
जन जन का मंगल करे, दूर करे संताप।। ८० ।।
शील धर्म पालन भला, सम्यक् भली समाधि।
प्रज्ञा तो जाग्रत भली, दूर करे भव व्याधि।। ८१ ।।
शील धर्म की नींव है, है समाधि ही भीत।

प्रज्ञा छत है धर्म की, मंगल भुवन पुनीत।। ८२ ।।
प्रज्ञा शील समाधि ही, शुद्ध धर्म का सार।
काया वाणी चित्त के, सुधरे सब व्यवहार।। ८३।।
शुद्ध धर्म का शांतिपथ, संप्रदाय से दूर।
शुद्ध धर्म की साधना, मंगल से भरपूर।। ८४ ।।
जो चाहे सुखिया रहें, रहें सभी खुशहाल।
मन से, तन से, वचन से, शुद्ध धर्म ही पाल।। ८५ ।।
धर्म न मिथ्या रूढ़ियां, धर्म न मिथ्याहार।
धर्म न मिथ्या मान्यता, धर्म सत्य का सार।। ८६ ।।
जटा-जूट माला तिलक, हुए शीष के भार।
भेष बदल कर क्या मिला, अपना चित्त सुधार।। ८७ ।।
कर्मकांड न धर्म है, धर्म न बाह्याचार।
धर्म चित्त की शुद्धता, सेवा करुणा, प्यार।। ८८ ।।
गुण तो धारण ना किया, रहे नवाते माथ।
बहा धर्म रस, रह गया फूटा बर्तन हाथ।। ८९ ।।
भीतर बाहर स्वच्छ हों, करें स्वच्छ व्यवहार।
सत्य, प्रेम, करुणा जगे, यही धर्म का सार।। ९० ।।

धर्म धारण करना

जीवन में धारण किए, धर्म होय फलवन्त।
बिन औषधि सेवन किए, कहाँ रोग का अन्त।। ९१ ।।
धारण करना धर्म है, वरना कोरी बात।
सूरज उगे प्रभात है, वरना काली रात।। ९२ ।।
शुद्ध धर्म धारण करें, करें दूर अभिमान।
मिले अमित संतोष सुख, धर्म सुखों की खान।। ९३ ।।
चर्चा ही चर्चा करे, धारण करे न कोय।
धर्म बिचारा क्या करे, धारे ही सुख होय।। ९४ ।।
जीवन सारा खो दिया, ग्रन्थ पढ़न्त पढ़न्त।
तोते मैना की तरह, नाम रटन्त रटन्त।। ९५ ।।
मानव जीवन रतन सा, किया व्यर्थ बरबाद।

चर्चा कर ली र्धम की, चाख न पाया स्वाद।। ९९ ।।
धर्म न मंदिर में मिले, धर्म न हाट बिकाय।
धर्म न ग्रन्थों में मिले, जो धारे सो पाय।। ९९ ।।
शुद्ध धर्म जागे जहाँ, होय सभी का श्रेय।
निज हित परहित, सर्वहित यही धर्म का ध्येय।। १००।।

गिरिधर की कुंडलियां।

साईं ये न विरुद्धिये, कवि पंडित गुरु यार।
बेटा वनिता पौरिया, यज्ञ करावन हार।।
यज्ञ करावन हार, राज मन्त्री जो होई।
विप्र पड़ोसी वैद्य, और जो करै रसोई।।
कह गिरधर कविराय इन्हें कैसे समझाईं।
इनते रहते तरह दिये, बनि आवै साईं।। १ ।।
चिंता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुवां दीखे नहीं, उर अन्दर धुंधवाय।।
उर अन्दर धुंधवाय, जरै ज्यों कांच की भट्टी।
जर गयो लोहू मांस, रह गई हाड़ की टट्टी।
कह गिरधर कविराय सुना रे मेरे मिंता।
वे नर कैसे जियें, जिन्हें घर व्यापी चिंता।। २ ।।
बिना बिचारे जो करे, सो पीछे पछिताय।
कार्य बिगाड़े आपनो, जग में होय हँसाय।।
जगमें होय हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सनमान, राग रंग सब बिसरावै।।
कह गिरधर कविराय दुख जो टरत न टारे।
खटकत हैं दिन रैन किये जो बिना बिचारे।। ३ ।।
सोना लेने पिय गये, सूनो कर गये देश।
सोनो मिल्यो न पिय मिले, रूपा हो गये केश।।
रूपा हो गये केश, रोय रंग रूप गमायो।
हुई हरद से जरद तबहुं, पीया नहिं आयो।।
कह गिरधर कविराय नमक बिन सभी अलोना।
जरियो वोही देश जहां उपजत है सोना।। ४ ।।

प्रसिद्ध कवित्त सवैया

ज्ञान घटै जड़-मूढ़की संगति, ध्यान घटै बिन धीरज लाये।
मान घटै जबहीं कछु मांगहु, चाह घटै नितके घर जाये।।
प्रीति घटै जु कठोरहु बोलहु, रीति घटै मुंह नीच लगाये।
उद्यम से दारिद्र घटै और, पाप घटै हरिके गुण गाये।।

चढ़े पौढ़े

गर्भ चढ़े पुनि सूप चढ़े, पलना पे चढ़े चढ़े गोद घनाके।
हाथी चढ़े पुनि अश्व चढ़े, सुखपाल चढ़े चढ़े सेज त्रियाके।।
मित्र औ शत्रु के चित्त चढ़े, कवि ब्रह्म भनैं दिन बीते पनाके।
ईश कृपालु को जान्यो नहीं, अब कांधे चल्यो चढ़ि चार जनाके।।
पेट में पौढ़्यौ औ पौढ़्यो मही, जननी संग पौढ़िके बाल कहायो।
पौढ़न लाग्यो त्रिया संगही जब, सारी उमर हँसि पौढ़ि गमायो।।
क्षीर समुद्रको पौढ़नहार, जिन्हें धरि ध्यान कबहुं नहिं ध्यायो।
पौढ़त पौढ़त पौढ़ि गयो, अब चितापर पौढ़नको दिन आयो।। २३।।

ईश्वर-विश्वास

जब दांत न थे तब दूध दियो, जब दांत हुए तो अनाजहुं दैहैं।
जीव बसैं जल औ थल में, तिनकी सुधि लेत सो तेरहुँ लैहैं।।
क्यों अब सोच करै मन मूरख, सोच करे कछु हाथ न ऐहैं।
जान को देत अजान को देत, जहान को देत सो तोहूंको दैहैं।।
यद्यपि द्रव्यको सोच करे, कहु गर्भ में केतो तूं गांठि ते खायो।
जा दिन जन्म लियो जग में, तब केतिक क्रोड़ लिये संग आयो।।
वाको भरोसो क्यों छोड़े अरे मन, जासे अहार अचेत में पायो।
ब्रह्म भनैं जनि सोच करै, वहि सोचिहै जो बिरुला उलहायो।।
प्रेम कियो ध्रुवने प्रभुसों, हरि के दरवाजे पे आसन पायो।
प्रेम कियो प्रहलाद सुनो, यश जासु की है त्रैलोक में छायो।।
प्रेम कियो मृकुटि सुत ने, जिन काल कूं जीतिके नाम बढ़ायो।
प्रेम करो प्रभुके पद को, कहु कौन अहै जेहि ना फल पायो।।

(१७)

रामकृष्णवचनामृत

१. इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को पाकर जो इसी जीवन में ईश्वरलाभ के लिए चेष्टा नहीं करता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है।

२. उस एक ईश्वर को जानो; उसे जानने से तुम सभी कुछ जान जाओगे। 'एक' के बाद शून्य लगाते हुए सैकड़ों और हजारों की संख्या प्राप्त होती है, परन्तु 'एक' को मिटा डालने पर शून्यों का कोई मूल्य नहीं होता। 'एक' ही के कारण शून्य का मूल्य है। पहले 'एक' बाद में 'बहु'। पहले ईश्वर, फिर जीव-जगत।

३. ईश्वर स्वयं ही मनुष्य के रूप में लीला करते हैं। वे बड़े जादूगर हैं-यह जीव-जगत-रूपी इंद्रजाल उन्हीं के जादू का खेल है। केवल जादूगर ही सत्य है और जादू मिथ्या।

४. यह ठीक है कि बाघ के भीतर भी परमेश्वर विद्यमान है, पर इस कारण उसके सामने नहीं चले जाना चाहिए। उसी प्रकार यद्यपि अत्यंत दुर्जन व्यक्तियों के भीतर भी ईश्वर विराजमान है, तथापि उनकी संगति करना उचित नहीं।

५. माया और ब्रह्म मानो चलता हुआ साँप और स्थिर पड़ा हुआ साँप हैं। अर्थात् शक्ति क्रियाशील अवस्था में माया है और निष्क्रिय अवस्था में ब्रह्म।

६. जैसे समुद्र का जल कभी स्थिर होता है तो कभी तरंगपूर्ण, वैसे ही ब्रह्म और माया है। शांत समुद्र मानो ब्रह्म है, और तरंगायित अवस्था में माया।

७. जब तराजू का एक पल्ला दूसरे पल्ले से भारी होकर झुक जाता है तो उसका निचला काँटा ऊपरवाले से अलग हट जाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य का मन कामिनी-कंचन के भार से संसार की ओर झुक जाता है तो वह ईश्वर में एकाग्र नहीं हो पाता, वह उनसे दूर हट जाता है।

८. धन जिसके लिए दास की तरह है वही ठीक-ठीक मनुष्य है। जो

धन का योग्य रीति से उपयोग करना नहीं जानता वह 'मनुष्य' कहलाने लायक नहीं है।

९. अगर मैं अपने को इस अँगौछे की ओट कर लूँ तो तुम मुझे नहीं देख सकते। पर मैं तुम्हारे बिलकुल नजदीक ही हूँ। इसी भाँति, और सभी चीजों की अपेक्षा ईश्वर ही तुम्हारे सब से ज्यादा निकट है, किंतु इस अहंरूपी आवरण के कारण तुम उनके दर्शन नहीं पाते।

१०. मुक्ति कब होगी ? जब 'मैं' चला जाएगा तब।

११. 'मैं' दो तरह का होता है, एक है 'पक्का मैं' और दूसरा 'कच्चा मैं'। जो कुछ 'मैं देखता, सुनता या महसूस करता हूँ उसमें कुछ भी मेरा नहीं, यहाँ तक कि यह शरीर भी मेरा नहीं है।' 'मैं नित्यमुक्त हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ।'--यह 'पक्का मैं' है। "यह मेरा मकान है", 'यह मेरा लड़का है', 'यह मेरी पत्नी है', 'यह मेरा शरीर है'--यह सब 'कच्चा मैं' है।

१२. ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं, वे यंत्री हैं, मैं यंत्र हूँ-यह विश्वास यदि किसी में आ जाए तब तो वह जीवन्मुक्त ही हो गया। "हे प्रभो, तुम्हारा कर्म तुम्हीं करते हो, पर लोग कहते हैं, मैं करता हूँ।"

१३. कोरे पांडित्य से क्या लाभ ? पंडित को बहुत सारे शास्त्र, अनेकों श्लोक मुखाग्र हो सकते हैं, पर वह सब केवल रटने और दुहराने से क्या लाभ ? अपने जीवन में शास्त्रों में निहित सत्यों की प्रत्यक्ष उपलब्धि होनी चाहिए। जब तक संसार के प्रति आसक्ति है, कामिनी-कंचन पर प्रीति है, तब तक चाहे कितने शास्त्र पढ़ो, ज्ञानलाभ नहीं होगा, मुक्ति नहीं मिलेगी।

१४. 'गीता' शब्द का लगातार उच्चारण करने से 'गी तागी तागी तागी. ..' अर्थात् 'त्यागी, त्यागी' निकलने लगता है। अर्थात् गीता यही कहती है कि 'हे जीव, सर्वस्व का त्याग कर ईश्वर के पादपद्मों में चित्त लगा।'

१५. जहाज में कंपास का काँटा सदा उत्तर की ओर रहता है, इसीलिए

जहाज की दिशा में भूल नहीं होती। इसी प्रकार यदि मनुष्य का मन भी सदा ईश्वर की ओर रहे तो उसे संसारसागर में दिशा चूकने का भय नहीं रहता।

१६. नाव पानी में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव के अंदर पानी न रहे, वरना नाव डूब जाएगी। साधक संसार में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर साधक के भीतर संसार न रहे।

१७. साधुसंग धर्मसाधना का एक प्रधान अंग है।

१८. सांधुसंग मानो चावल का धोया हुआ जल है। किसी को अत्यधिक नशा चढ़ा हो तो उसे चावल का धोया हुआ पानी पिला देने से नशा उतर जाता है। इस प्रकार साधुसंग संसार में कामना-वासनारूपी मद्य पीकर जो मत्त हुए हैं उनका नशा उतार देता है।

१६. जैसे रुई के पहाड़ में एक छोटी सी चिनगारी पड़ जाने पर वह देखते ही देखते जलकर खाक हो जाता है, वैसे ही भक्ति के साथ भगवान का नामगान करने पर पर्वतसमान पाप भी नष्ट हो जाता है।

२०. जिस प्रकार धनिकों के घर की दासी मालिक के बच्चों को अपने ही बच्चों की तरह प्रेम से पालती-पोसती है, पर मन ही मन निश्चित जानती है कि इन पर मेरा कोई अधिकार नहीं, उसी प्रकार तुम भी अपने बच्चों का प्रेम से पालन-पोषण करो, परंतु मन ही मन जान रखो कि उनपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं, भगवान् ही उनके यथार्थ पिता हैं।

२१. जो हमेशा दूसरों के गुण-दोषों की चर्चा करता रहता है, वह अपना समय फालतू बरबाद करता है, क्यों कि परचर्चा करने से न तो आत्मचर्चा हो पाती है और न परमात्मचर्चा ही।

२२. वर्णमाला में 'स'-वर्ण ही एक ऐसा है जिसके तीन रूप हैं--श, ष, स। अर्थात् सह, सह, सह। बचपन में ही हमें वर्णमाला के भीतर से सहन करने की शिक्षा दी जाती है।

२३. सभी के लिए सहनशीलता अत्यंत महत्त्वपूर्ण गुण है।

२४. तूफान में उड़नेवाली जूठी पत्तल की तरह निरहंकार और नम्र बनो।

२५. जब तक मनुष्य बच्चों जैसा सरल नहीं हो जाता तब तक उसे ज्ञानलाभ नहीं होता। सब दुनियादारी, विषयबुद्धि को भूलकर बालक जैसे नादान बन जाओ, तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे।

२६. वास्तव में सच्चा मनुष्य वह है जो जीवित होकर भी मृत है--अर्थात् मृत व्यक्ति की तरह जिसकी कामना-वासना आदि प्रवृत्तियाँ सम्पूर्णतया नष्ट हो गयी हैं।

२७. नारी मात्र ही भगवती जगज्जननी का अंश है। अतः सभी को स्त्रियों की ओर मातृदृष्टि से देखना चाहिए।

२८. तुम्हारे भावों में किसी प्रकार का छल कपट न हो। सच्चे, निष्कपट बनो, मन-मुख एक करो, तुम्हें अवश्य ही फल मिलेगा। सरल आंतरिक भाव से प्रार्थना करो, वे तुम्हारी-प्रार्थना अवश्य ही सुनेंगे।

२९. प्रार्थना कैसे की जाए, यही मुख्य है। संसार की वस्तुओं के लिए प्रार्थना नहीं करना चाहिए, नारद की तरह प्रार्थना करना चाहिए। नारद ने रामचंद्रजी से कहा था, ''हे राम! यही करो कि तुम्हारे चरणकमलों में मेरी शुद्ध भक्ति हो! राम ने कहा, ''तथास्तु। और कोई वर लो।''

नारद ने कहा, ''कृपा कर यह वर दो कि मैं तुम्हारी भुवन-मोहिनी माया में मुग्ध न हो जाऊँ।'' राम ने फिर कहा, ''तथास्तु। कोई और वर माँगो।'' नारद ने कहा, ''नहीं, भगवन्! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।''

३०. जिस प्रकार एक ही जल को कोई 'वारि' कहता है और कोई 'पानी', कोई 'वाटर' कहता है तो कोई 'एक्वा', उसी प्रकार एक ही सच्चिदानंद को देशभेद के अनुसार कोई 'हरि' कहता है तो कोई 'अल्लाह', कोई 'गॉड' कहता है तो कोई 'ब्रह्म'।

३१. जिस प्रकार छत पर चढ़ने के लिए निसैनी, बाँस, रस्सा, सीढ़ी आदि अनेक उपाय हैं, उसी प्रकार ईश्वर के निकट पहुँचने के लिए भी अनेक उपाय हैं--प्रत्येक धर्म ही एक-एक उपाय बताता है।

३२. जो अपने भावों के राज्य में चोरी-धोखेबाजी नहीं करता, वही परमधाम को पहुँच सकता है। अर्थात् सरल विश्वास और निष्कपट भाव से ही सच्चिदानंद की प्राप्ति होती है।

३३. जिसमें विश्वास है, उसमें सब है; विश्वास नहीं तो कुछ भी नहीं।

३४. जो सरल भक्ति-विश्वास के साथ प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसे बहुत जल्दी ईश्वरप्राप्ति होती है।

३५. सिद्धियों को विष्ठातुल्य हेय जानकर उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। साधना और संयम का अभ्यास करते हुए कभी-कभी वे अपने आप आ जाती हैं, परन्तु जो उनकी ओर ध्यान देता है, वह उन्हीं में अटक जाता है, भगवान की ओर अग्रसर नहीं हो पाता।

३६. हृदय के भीतर भक्तिभाव रखो, कपट-चतुराई छोड़ दो। जो सांसारिक कर्म करते हैं, दफ्तर में काम या व्यापार करते हैं, उन्हें भी सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सच बोलना कलियुग की तपस्या है।

३७. जैसे काँच में यदि पारा लगा हुआ हो तो उसमें चेहरा दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मचर्यपालन के द्वारा वीर्यधारण करने से ब्रह्मदर्शन हो सकता है।

३८. ब्रह्मचर्यपालन किये बिना, वीर्यधारण किये बिना सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्त्वों की धारणा नहीं होती।

३९. जिसने स्त्रीसुख का त्याग किया है उसने तो जगत् सुख का त्याग किया है। वास्तविक ही ईश्वर उसके अत्यंत निकट हैं।

४०. इस प्रकार विवेक-विचार किया करो :-

कामिनी और कंचन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है ? दाल-रोटी कपड़े और रहने के लिए जगह-बस इतना ही, और कुछ नहीं। रुपये से निश्चित ही ईश्वर नहीं मिलते। रुपया हरगिज जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। इसी को विवेक-विचार कहा जाता है।

रुपये में क्या रखा है ? सुन्दर स्त्री की देह में भी क्या है ? विचार करके देखो सुंदरी की देह में हाड़, मांस, चमड़ी, चरबी, खून, मल,

मूत्र-यही सब है। पर आश्चर्य है कि मनुष्य ईश्वर को छोड़ इन्हीं चीजों में मन लगाता है।

४१. वैराग्य कई प्रकार का है। संसार में दुःख-कष्ट पाकर एक प्रकार का वैराग्य आता है। परंतु, संसार के सभी भोग अनित्य हैं, इस बोध के कारण जो वैराग्य आता है, वही यथार्थ वैराग्य है। किसी में यदि यह वैराग्य आ जाए तो सब कुछ रहते हुए भी उसके लिए कुछ नहीं है।

४२. कर्म चाहिए, तभी ईश्वरदर्शन होते हैं। एक दिन मैंने भावावस्था में हालदार-पुकुर देखा। देखा, एक नीची जाति का आदमी काई हटाकर पानी भर रहा है, और बीच बीच में एक एक बार हाथ में लेकर देख रहा है। मानो उसने यह दिखाया कि काई हटाये बिना पानी नहीं दिखाई देता--कर्म किये बिना भक्ति नहीं होती, ईश्वरदर्शन नहीं होते। ध्यान, जप यही कर्म है, उनका नामगुण-कीर्तन भी कर्म है, और दान, यज्ञ ये सब भी कर्म ही हैं।

४३. ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए।

४४. ध्यान करते समय ऐसा चिंतन क़िया करो कि मानों तुम अपने मन को रेशम की रस्सी से इष्टदेवता के चरणकमलों के साथ बाँधकर रख रहे हो, ताकि वे वहाँ से और कहीं न जा पाएँ। रेशम की रस्सी किसलिए कह रहा हूँ ? वे चरणकमल अत्यंत कोमल हैं, दूसरी रस्सी से बाँधने पर उन्हें कष्ट होगा, इसलिए।

४५. भगवान के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए ? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है, उतना यदि भगवान के प्रति हो तो उनका लाभ होता है।

४६. इस कलियुग में कोई यदि ईश्वर के लिए तीन दिन भी व्याकुल होकर रोए तो ईश्वर की कृपा से वह सिद्ध हो सकता है।

४७. अँधेरे में गश्त लगानेवाला पहरेदार अपनी लालटेन के उजाले से

सब को देख सकता है पर उसे कोई नहीं देख पाता। अगर वह स्वयं उस लालटेन का प्रकाश अपने पर डाले तभी उसे देखा जा सकता है। इसी प्रकार, भगवान भी सब को देखते हैं, परंतु उन्हें कोई नहीं देख पाता। पर यदि वे कृपा करके स्वयं को प्रकाशित करें तभी मनुष्य उन्हें देख पाता है।

४८. दियासलाई की एक सलाई के जलते ही हजारों साल का अंधकार भी उसी क्षण दूर हो जाता है, वैसे ही एक बार ईश्वर की कृपादृष्टि के पड़ते ही जीव के जन्म-जन्मांतर के पापपुंज तत्काल दूर हो जाते हैं।

४६. भगवत्कृपा का पवन सदा बह रहा है। आलसी लोग उसका सदुपयोग नहीं करते। पंरतु जो उद्यमशील होते हैं, वे अपनी नौका का पाल फहरा कर आसानी से पार हो जाते हैं।

५०. यदि तुम्हारे भीतर ईश्वर के प्रति ठीक-ठीक अनुराग हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो, तो अवश्य ही वे तुम्हें सद्गुरु से मिला देंगे। साधक को गुरु के लिए चिंता नहीं करनी चाहिए।

५१. समुद्र में एक प्रकार की सीपी होती है जो स्वाती नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद के लिए सदा मुँह बाए पानी पर तैरती रहती है, किंतु स्वाती की वर्षा का एक बिंदु जल मुँह में पड़ते ही वह मुँह बंद कर सीधे समुद्र की गहरी सतह में डूब जाती है तथा वहाँ उस जलबिंदु से मोंती तैयार करती है। इसी तरह यथार्थ मुमुक्षु साधक भी सद्गुरु की खोज में व्याकुल होकर इधर-उधर भटकता रहता है; परंतु एक बार सद्गुरु के निकट मंत्र पा जाने के बाद वह साधना के अगाध जल में डूब जाता है तथा अन्य किसी ओर ध्यान न देते हुए सिद्धिलाभ होने तक साधना में लगा रहता है।

५२. राई के दाने जब बंधी हुई पोटली से नीचे छितरा जाते हैं, तब उनका इकट्ठा करना कठिन होता है, उसी प्रकार जब मनुष्य का मन संसार की अनेक प्रकार की बातों में दौड़ता फिरता है, तब उसको रोक कर एक ओर लगाना सरल बात नहीं है।

५३. जिस घर के लोग जागते रहते हैं, उस धर में चोर नहीं धुस सकते, उसी प्रकार यदि तुम हमेशा चौकन्ने रहो तो बुरे विचार तुम्हारे हृदय में नहीं घुस सकेंगे।

५४. निष्काम कर्म एक उपाय है- उद्‌देश्य नहीं; जीवन का उद्‌देश्य है ईश्वरलाभ। कर्म आदिकांड है-वह उद्देश्य नहीं हो सकता। कर्म को जीवन का सर्वस्व मत समझो। ईश्वर से भक्ति के लिए प्रार्थना करो। यदि सौभाग्यवश भगवान तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएँ, तो क्या तुम उनसे अस्पताल, दवाखाने, कुएँ-तालाब, रास्ते, धर्मशालाएँ इन्हीं सब के लिए प्रार्थना करोगे ? नहीं, ये सब चीजें तभी तक सत्य प्रतीत होती हैं, जब तक भगवान के दर्शन नहीं होते। एक बार उनके दर्शन हो जाएँ तो ये सब स्वप्नवत्, अनित्य असार लगने लगते हैं। तब साधक उनसे केवल ज्ञान और भक्ति की ही प्रार्थना करता है।

५५. वेद, तंत्र, पुराण आदि सभी शास्त्र जूठे हो चुके हैं, क्योंकि उनका मुख से उच्चारण किया गया है, उन्हें पढ़ा गया है। केवल एक वस्तु जूठी नहीं हो पायी, वह है ब्रह्म। ब्रह्म क्या है, यह आज तक कोई बता नहीं पाया।

५६. ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं--जैसे अग्नि और उसकी दहनशक्ति। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं--जैसे दूध और उसका धवलत्व। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं--जैसे मणि और उसकी प्रभा। तुम इनमें से एक को छोड़ दूसरे को सोच ही नहीं सकते।

श्री रामकृष्णः संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश
-रामकृष्ण मठ नागपुर, से साभार

□□□

(१८)

स्वामी विवेकानंद की वाणी

१. दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने को पवित्र बना लें। आओ, हम अपने आपको पूर्ण बना लें।

२. प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्टता होती है, अन्य सब बातें उसके बाद आती हैं। भारत की विशिष्टता धर्म है। समाज-सुधार और अन्य सब बातें गौण हैं।

३. उठो, जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। उठो, जागो, तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

४. सदा विस्तार करना ही जीवन है और संकोच मृत्यु। जो अपना ही स्वार्थ देखता है, आराम-तलब है, आलसी है, उसके लिए नरक में भी जगह नहीं है।

५. हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्य-भूमि है। यहीं बड़े बड़े महात्माओं का जन्म हुआ है, यहीं संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं-केवल यहीं, आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला है।

६. हमें दूसरों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। हम सब एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं। निर्बलता और सबलता में भेद केवल मात्रा का ही है, स्वर्ग-नरक में, जीवन-मृत्यु में, लोक-परलोक में केवल मात्रा का ही अंतर है-प्रकार का नहीं। कारण यह है कि सबका रहस्य वही एक है। सब एक ही हैं, जो भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हो रहे हैं।

७. यदि धर्म मनुष्य को सब स्थानों और सब स्थितियों में सहायता नहीं पहुँचा सकता तो वह किसी काम का धर्म नहीं है।

८. वह नास्तिक है जिसे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

९. वही सबसे बड़ा महापुरुष है जो शपथपूर्वक यह कह सकता है कि

मुझे अपना पूर्ण ज्ञान है। क्या आप जानते हैं कि आपकी ओट में-भीतर कितनी शक्तियाँ, कितने बल छिपे पड़े हैं ? क्या वैज्ञानिकों को इसका पूरा ज्ञान हो गया है कि मनुष्यों में क्या क्या गुण भरे हुए हैं ? मनुष्य को उत्पन्न हुए करोड़ों वर्ष हो गये, पर अभी तक उसकी शक्तियों का एक अणुमात्र व्यक्त हो पाया है। अतः आपको यह नहीं कहना चाहिए कि हम निर्बल हैं।

१०. विवेकवान होकर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण, बात-बात में सत्य-असत्य का विवेक करने से हमें सत्य की कसौटी मिल जायेगी। यही सत्य पवित्रता है, यही एकता है। जिससे एकता का संपादन हो, वह सत्य है। प्रेम सत्य है और घृणा मिथ्या है। कारण यही है कि घृणा से भेद बढ़ता है।...प्रेम सबको मिलाता और प्रेम उस एकता का संपादन करता है। प्रेम ही सत्ता है। वह साक्षात् ईश्वर है। जो कुछ है, सब उसी एक प्रेम की अभिव्यंजना है।

११. हमें अपने सब कर्मों में यह विचार रखना चाहिए कि वह एकता का संपादन करता है या नानात्व का। यदि नानात्व का संपादन होता है, तो हमें उसे परित्याग कर देना चाहिए और यदि एकत्व का संपादन होता है तो वह निश्चय ही अच्छा है।

१२. आत्मा का दर्शन अन्तःकरण में ही होता है, बुद्धि द्वारा उसे नहीं देख सकते। बुद्धि तो झाड़ू देने वाली है। वह हमारे लिए राह साफ करती है।

१३. वही अकेला ईश्वर पूजा करने योग्य है, जो मनुष्य की आत्मा है, मनुष्य के शरीर में है। वह मंदिरों का भी मंदिर है। यदि हम उसमें पूजा नहीं कर सकते तो कोई मंदिर किसी काम का नहीं हो सकता।...जिस समय हम मनुष्य के शरीर रूपी मंदिर में बैठे हुए ईश्वर को साक्षात् करते हैं, उस समय हमारे सारे बंधन छूट जाते हैं।

१४. पूर्णता कहीं से प्राप्त करना नहीं है, वह हममें है। अमरत्व और आनन्द को कहीं ढूँढना नहीं है। वे हममें विद्यमान हैं और सदा से हमारे रहे हैं।

१५. मैं सभी प्राचीन धर्मों को मानता हूँ और सबका आदर करता हूँ। मैं तो ईश्वर को सबके साथ जिस रूप में वे पूजें, पूजता हूँ। मैं मुसलमानों के साथ मस्जिद में जाऊँगा, ईसाइयों के साथ गिरजे में जाऊँगा और क्रास के सामने घुटने टेकूंगा। मैं बौद्धों के मंदिर में भी जाऊँगा और बुद्ध और धर्म की शरण को प्राप्त हूँगा। मैं जंगल में जाऊँगा और हिन्दुओं के साथ बैठूँगा, जो उस प्रकाश को देखने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, जो सबके हृदय में प्रकाशमान हो रहा है।

१६. निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं। इस खोज का आरंभ, मध्य और अंत प्रेम में होता है। ईश्वर के प्रति एक क्षण की भी प्रेमोन्मत्तता हमारे लिये शाश्वत मुक्ति देने वाली होती है।

१७. धर्मानुष्ठान और आध्यात्मिक अनुभूति का एक छोटा सा कण भी ढेरों थोथी बकवासों और अंधी भावुकता से बढ़कर है। हमें कहीं एक भी तो ऐसा आध्यात्मिक दिग्गज दिखा दो, जो अज्ञान और मतान्धता की ऊसर भूमि से उपजा है। यदि यह न कर सको तो बन्द कर लो अपना मुँह, खोल दो अपने हृदय के कपाट, जिससे सत्य की शुभ्रोज्ज्वल किरणें भीतर प्रवेश कर सकें, और जाओ उन भारत-गौरव ऋषि-मुनियों की शरण में जिनके प्रत्येक शब्द के पीछे प्रत्यक्ष अनुभूति का बल है। आओ, हम सब अबोध शिशु के समान उनके चरणों में बैठें और ध्यानपूर्वक सुनें उनके उपदेश।

१८. हर एक आदमी गुरु होना चाहता है। एक भिखारी भी चाहता है कि वह लाखों का दान कर डाले। जैसे हास्यास्पद वे भिखारी हैं, वैसे ही ये गुरु भी।

१९. यदि तुम भक्त होना चाहते हो, तो तुम्हारे लिए यह जानना बिल्कुल आवश्यक नहीं कि भगवान श्री कृष्ण मथुरा में हुए थे या व्रज में, वे करते क्या थे और जब उन्होंने गीता की शिक्षा दी तो उस दिन ठीक-ठीक तिथि क्या थी। गीता में कर्तव्य और प्रेम सम्बन्धी जो उदात्त उपदेश दिये गये हैं, उनको अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करो-उनकी आवश्यकता हृदय से अनुभव करो। बस, यही तुम्हारे लिये आवश्यक है। उसके तथा उसके प्रणेता के सम्बन्ध में अन्य सब विचार तो केवल विद्वानों के आमोद के लिए हैं।

(१६)

गांधी-वाणी

१. कार्य की अधिकता नहीं, अनियमितता आदमी को मार डालती है।

२. क्रोध में कुछ न कर। क्या तू तूफान के समय अपनी नौका समुद्र में डालेगा?

३. स्वजन पर जो क्रोध होता है उसे रोकने में जय है, परजन पर क्रोध रोकने को तो हम मजबूर हो जाते हैं।

४. जब तक किसी बात के बारे में पूरा प्रमाण न हो और उसे साबित न कर सकें, तब तक उसे नहीं कहना चाहिए।

५. जिस मनुष्य में विषय-वासना रहती है, उसमें जीभ के स्वाद भी अच्छी मात्रा में होते हैं।

६. गांधी जी द्वारा गिनाये गये सात मुख्य पाप हैं
    १. सिद्धान्तविहीन राजनीति।
    २. श्रमविहीन सम्पत्ति।
    ३. विवेकविहीन भोग-विलास।
    ४. मानवीयताविहीन विज्ञान
    ५. चरित्रविहीन शिक्षा
    ६. नैतिकताविहीन व्यापार और
    ७. त्यागविहीन पूजा।

७. जिस आदमी को हर एक चीज अपनी जगह पर रखने की आदत नहीं है, वह मूर्ख है; बहुत वक्त उस चीज को ढूंढने में गंवाता है।

८. जब सब कुछ ईश्वर का है, तब उसको क्या अर्पण करें।

९. असल में तो अपने धर्म पर कायम रह कर किसी भी दूसरे धर्म में जो विशेषताएं दिखाई दें, उन्हें लेने का हमारा अधिकार है, इतना ही नहीं, ऐसा करना हमारा धर्म है, दूसरे धर्मों से कुछ भी न लिया जा सके, इसका नाम धर्मान्धता है।

१०. अनासक्त का एक लक्षण यह है कि उसका कोई कार्य दिन के अन्त में बाकी नहीं रहता।

११. अनासक्ति की पराकाष्ठा गीता की मुक्ति है और वही अर्थ हम ईशोपनिषद् के पहले मंत्र में पाते हैं –
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।
१२. स्त्री अबला नहीं है, अपने को वह कभी पुरुष से बलहीन नहीं समझे। इसलिए किसी पुरुष की दया न मांगे, न अपेक्षा करे।
१३. हमारे रोजमर्रा के काम कितने छोटे हों मगर हम उनसे पूरा संतोष मानें तो इसके बराबर कोई अच्छी बात नहीं है। जो राह देखते हैं, जागृत रहते हैं और प्रार्थना करते हैं, उनके लिए ईश्वर बड़े काम और बड़ी जिम्मेदारियां जुटा देता है।
१४. सुख-दुःख देने वाली बाहरी चीजों पर आनन्द का आधार नहीं है। आनन्द सुख से भिन्न वस्तु है। मुझे धन मिले और उसमें सुख मानूं, वह मोह है। मैं भिखारी होऊँ, खाने का दुःख हो, फिर भी मेरे चोरी या किन्हीं दूसरे प्रलोभनों में न पड़ने की जो बात है, वह मुझे आनन्द देती है।
१५. जो कुछ हम करें सो न किसी को खुश करने के लिए, न रंजीदा करने के लिए, सिर्फ अपने ईश्वर को खुश करें।
१६. जब काम बहुत है और समय कम है, तो मनुष्य क्या करे। धैर्य रखे, और जो ज्यादा उपयोगी माने, उसे पूरा करे और बाकी ईश्वर पर छोड़ दे। दूसरे रोज जिन्दा होगा तो जो रह गया है, उसे पूरा करेगा।
१७. मनुष्य जितना बोल कर बिगाड़ता है, इतना खामोशी से कभी नहीं।
१८. जो मनुष्य सब को खुश रखना चाहता है वह किसी को खुश नहीं करेगा।
१९. दूसरों का अवलोकन करके हम उनके गुणों का अनुभव करें और अवगुणों को सहन करें क्योंकि अवगुणों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यही है।
२०. अस्तेय का अर्थ चोरी नहीं करना, इतना ही नहीं है। जिस वस्तु की हमें आवश्यकता नहीं है उसे रखना, लेना भी चोरी है। चोरी में हिंसा

तो भरी ही है।

२१. झूठ का कोई जवाब नहीं दिया जाय, झूठ अपनी मौत मर जाता है। उसकी अपनी कोई शक्ति नहीं होती। विरोध पर वह फूलता-फलता है।

२२. जो मनुष्य त्याग करता है और दुःख मानता है, उसने त्याग किया ही नहीं है। सच्चा त्याग सुखद होता है। मनुष्य को ऊँचे ले जाता है।

२३. शारीरिक दुर्बलता सच्ची दुर्बलता नहीं। मन की दुर्बलता ही सच्ची दुर्बलता है।

२४. जो मनुष्य अपने दुःखों को गाता है, वह उसे चौगुना करता है।

२५. नानक कहते हैं जो देते हो वह तुम्हारा है, जो रखते हो वह तुम्हारा नहीं है।

२६. राई जैसा दोष छिपाने से पहाड़ जैसा बनता है, जाहिर करने से नाबूद हो जाता है।

२७. धर्म में कहने की गुंजाइश नहीं होती, उसे जीवन में उतारना होता है, तब वह अपना प्रचार स्वयं कर लेता है।

२८. व्यवहार में जो काम न दे, वह धर्म कैसे हो सकता है ?

२९. मनुष्य जब एक नियम तोड़ता है तो दूसरे अपने आप टूट जाते हैं।

३०. अगर आत्मा है तो परमात्मा है ही।

३१. धर्मशास्त्र के नाम पर जो कुछ छपता है, उस सभी को ईश्वर वाक्य या वेद वाक्य मानना जरूरी नहीं है।

३२. सत्य के पुजारी पर परिस्थितियों का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए, परिस्थितियों के कारण बने कितने ही विचार गलत ठहरते हैं।

३३. दूध में जहर है तो हम दूध को फेंकते हैं। उसी तरह अच्छे के साथ पांखड रूप जहर है तो उसे फेंको।

३४. तुम्हारे जेब में एक पैसा है, वह कहां से आया और कैसे आया है, यह अपने से पूछो, इस कहानी से बहुत सीखोगे।

३५. ईश्वर को पत्र लिखने में न कागज चाहिए, न कलम-दवात, न शब्द। उस पत्र का नाम है प्रार्थना।

३६. वही सच्ची प्रार्थना कर सकता है, जिसे दृढ़ विश्वास हो कि ईश्वर

उसके भीतर है। जिसे यह विश्वास नहीं है, उसे प्रार्थना करने की जरूरत नहीं।

३७. जब भगवान निज मुख से कहते हैं कि वे सब प्राणी में विहार करते हैं, तो हम किससे बैर करें ?

३८. मन दो प्रकार का है- एक नीचे ले जाता है, दूसरा ऊँचे। इसे हम बराबर सोचें और पहचानें।

३९. मरे कैसे। आत्म हत्या करके कभी नहीं। आवश्यक होने पर मरने की तैयारी रख कर मरे, तब तो जिन्दा रहने के लिए मरे।

४०. जो मजदूरी याने काम नहीं करता लेकिन खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है।

४१. बोलना या नहीं-ऐसा संशय है, तब मौन रहना ही अच्छा है।

४२. सीधा रास्ता जैसा सरल है, ऐसा ही कठिन भी है। ऐसा न होता तो सब सीधा रास्ता ही लेते।

४३. जब हम कुछ भी लेते हैं, तब दूसरों के मुंह से निकालते हैं, इसलिए हर एक चीज लेने के समय हम देखें कि आवश्यक चीज ही लें और आवश्यकता से कम रखें।

४४. 'वृक्षन से मन ले'' भजन मनन करने योग्य है। वृक्ष तपता है और हमको शीतलता देता है। हम क्या करते हैं ?

४५. जो शरीर श्रम कर सकते हैं उनके लिए सदाव्रत खोलना पाप है, उनके लिए काम पैदा करना पुण्य है।

४६. समुद्र में पड़ी हुई मछली अगर समुद्र को पहचान सकती है तो संसार में पड़ा हुआ प्राणी संसार को पहचान सकता है।

४७. जब तबीयत कुछ खराब मालूम हो तब जो मजा नहीं खाने में है, वह खाने में नहीं है, ऐसा अनुभव कौन नहीं करता ?

४८. जो सच बोलना नहीं जानता, वह तो खोटा सिक्का है, उसकी कीमत ही नहीं।

४९. धूम्रपान से श्वास में दुर्गन्ध आती है। दांतों का रंग बिगड़ जाता है, और कभी कभी कैन्सर की बीमारी भी हो जाती है।

५०. मनुष्य का अधिकार कर्तव्य पर है, फल पर नहीं।
५१. तेरी बुद्धि और हृदय को जो सच मालूम हो, वही तेरा कर्तव्य है।
५२. स्वतंत्र वही हो सकता है, जो अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है।
५३. अहिंसा राजनीति में और खादी अर्थशास्त्र में एक नया साधन है।
५४. अहिंसा का अर्थ ईश्वर पर भरोसा रखना है।
५५. जैसे रोटी शरीर का भोजन है, वैसे ही प्रार्थना आत्मा का भोजन है।
५६. सत्याग्रह समाज की सारी बुराइयों का इलाज है।
५७. अन्याय के आगे कभी सिर मत झुकाओ। न अन्यायी से डरो और न उसे नुकसान पहुंचाओ, पर अन्याय का विरोध करो।
५८. लोगों में सहयोग पैदा करने का सर्वोत्तम साधन चरखा है।
५९. चरखा राष्ट्र की उन्नति और स्वतंत्रता का प्रतीक है।
६०. खादी का अर्थ है - उत्पादन और वितरण के लिए साधनों का विकेन्द्रीकरण।
६१. खादी अहिंसा पर आधारित जीवन पद्धति का प्रतीक है।
६२. यदि गांव नष्ट हो गये तो भारत भी नष्ट हो जायगा।
६३. जो दो दाने खाते हैं, वे चार दाने पैदा करें।
६४. सब अपनी रोटी के लिए श्रम करें, तो सबको भोजन मिलेगा।
६५. आर्थिक समानता अहिंसक स्वराज्य की असली कुंजी है।
६६. कर्तव्यपरायणता ही प्रार्थना है।
६७. बड़ा वह आदमी है, जो जिन्दगी भर काम करता है।
६८. दृश्य ईश्वर क्या है ? दीन की सेवा।
६९. मैं सत्य और अहिंसा की नीति के अलावा और किसी नीति को नहीं जानता।
७०. आतंक और धोखा सशक्त के नहीं, दुर्बल के हथियार हैं।
७१. लोकमत ही समाज को शुद्ध और स्वस्थ रख सकता है।
७२. नशाबन्दी का मतलब राष्ट्र का वयस्क शिक्षण है।
७३. पुरुष रोटी कमाने वाला है, स्त्री उसे वितरण करने वाली।
७४. मेरे सपने का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य होगा।

७५. स्त्रियों के सहयोग के बिना स्वतंत्रता अधूरी रहेगी।

७६. स्वतंत्रता का अर्थ आत्म-संयम और आत्मानुशासन है।

७७. जो जीवन का लोभ छोड़कर जीता है, वही जीवित रहता है।

७८. मन की प्रसन्नता से तमाम शारीरिक और मानसिक रोग दूर हो जाते हैं।

७९. चरित्र की शुद्धि सारे जन का ध्येय होना चाहिए।

८०. मैं भारत का हित चाहता हूं, इसलिए कि सारे विश्व का हित हो।

८१. गाय करुणा का काव्य है।

८२. आलस्य एक प्रकार की हिंसा है।

८३. सत्य और अहिंसा से तुम संसार को अपने सामने झुका सकते हो।

८४. जिसे पुस्तक पढ़ने का शौक है, वह सब जगह सुखी रह सकता है।

८५. अगर अमीरों में न्याय होता और गरीबों में संतोष होता तो भीख मांगने की प्रथा खत्म हो जाती।

८६. तुम्हें एक जन्तर देता हूँ। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ।

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा। क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर काबू रख सकेगा। यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है।

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

"आने वाली पीढ़ी, सम्भवतः यह विश्वास शायद ही करे कि इस प्रकार के हाड़-मांस का मानव कभी इस भूमि पर चला था..."

–एल्बर्ट आईन्स्टीन

(२०)

विनोबा जी का संदेश

१. दान का मतलब फेंकना नहीं, बल्कि बोना है।

२. मुझमें क्या कम दोष है? मैं दूसरों के दोष क्यों देखूं ? दोष किसी का न देखें, अपना भी न देखें, गुण-ही-गुण देखें, गुण से दोष भस्म हो जाते हैं।

३. स्मरण ही काफी नहीं है, अनुसरण भी चाहिए।

४. सामने यह आनन्दमय वृक्ष डोल रहा है। उसका सारा आनन्द देने में है। फूल, फल, पत्ती, छाया। और कोई काटने के लिए आये तो अंग भी काट कर दे देगा। वह सदा-सर्वदा त्याग करता है। परिणामस्वरूप लोग प्रेमपूर्वक वृक्ष बोते हैं। उसको पालने के लिए चेष्टा करते हैं। आनन्द का रहस्य इसी में है कि देते रहो। देते रहो, तो मिलता रहेगा। सृष्टि उदार है। वह गणित भी जानती है। एक बीज बोओगे, तो हजार बीज देगी। लेकिन शून्य बोओगे तो उसका सहस्र गुना शून्य ही होगा। थोड़ा भी त्याग करने के लिए राजी नहीं रहोगे, तो सृष्टि के आनन्द का अनुभव कैसे आयेगा ?

५. एक दिन आप नहीं खायें अथवा उपवास कर लें, यह चल सकता है पर कोई दिन आप अध्ययन नहीं करें, यह ठीक नहीं।

६. मनुष्य का तत्वज्ञान उसकी बुद्धि में गुप्त रहेगा, प्रकट होगा उसका आचरण। उसके आचरण से ही उसके तत्वज्ञान का नाम संसार को व उसको भी मालूम होगा।

७. शुद्ध आहार होने से चित्त की शुद्धि होती है, उससे अविचल स्मृति-लाभ होता है। स्मृति-लाभ से मनुष्य के चित्त की सब गांठें खुल जाती हैं। यहां आहार शब्द का अर्थ सिर्फ "अन्न" ही नहीं, बल्कि सभी इन्द्रियों का आहार होना चाहिए।

८. किसी भी बाह्य वस्तु का परिणाम उसी क्षण न होने देना चाहिए। दूसरे क्षण हो तो परवाह नहीं परन्तु पहले क्षण तो न होने देना चाहिए।

९. उदार में उधार नहीं।

१०. चित्त की एकाग्रता में सहायक प्रमुख बात है जीवन की परिमितता। हमारा सब काम नपा तुला होना चाहिए। गणित शास्त्र का यह रहस्य हमारी सब क्रियाओं में आ जाना चाहिए। औषधि जैसे नाप-तौल कर ली जाती है वैसे ही आहार-निद्रा भी नपी-तुली होनी चाहिए।

११. कर्म का अर्थ है स्वधर्माचरण की बाहरी स्थूल क्रिया। इस बाहरी क्रिया में चित्त को लगाना ही 'विकर्म' है।

१२. कुसंगति को सब तरह से छोड़ना चाहिए, क्योंकि उससे काम, क्रोध, मोह, स्मृति भंग, इस परम्परा से बुद्धि नाश व सर्वनाश हो जाता है। मनुष्य के मन में यह विचार असल में तरंग की तरह अल्प हों, तब भी वे कुसंग से समुद्र की तरह विशाल हो उठते हैं।

१३. बाहर अखंड प्रवृत्ति चल रही है, भीतर अखंड निवृत्ति है। ऐसा होता है--ज्ञानी पुरुष का जीवन।

१४. जब बुद्धि के अनुकूल मन और मन के अनुकूल इन्द्रियां हो जाती हैं तब जीवन का सारा व्यवहार आत्मा के अनुकूल हो जाता है। इसके विपरीत यदि इन्द्रियों के पीछे बुद्धि चलने लगे तब वह अंट-शंट प्रयोग करने लगती है और मन के पक्ष का समर्थन करने के लिए तरह-तरह के कुतर्क रचने लगती है। ऐसा होने पर जीवन का सारा व्यापार आत्मा के प्रतिकूल होने लगता है।

१५. काम करते हुए थोड़ा जीना अच्छा है। आलस्य में पड़े-पड़े लम्बा जीना कोई काम का नहीं।

१६. दान का अर्थ है समाज का ऋण चुकाने के लिए किया गया प्रयोग। दान का अर्थ परोपकार नहीं। समाज से मैंने अपार सेवा ली है। जब मैं इस संसार में आया तो दुर्बल और असहाय था। इस समाज ने मुझे छोटे से बड़ा किया है। इसलिए मुझे इस समाज की सेवा करनी चाहिए। परोपकार कहते हैं दूसरे से कुछ न लेकर की हुई सेवा को। परन्तु यहां तो हम समाज से पहले ही भरपूर ले चुके हैं।

१७. नित्य पाठ की चीज यदि यांत्रिक हो गयी, तो फिर वह चित्त में अंकित होने की जगह उल्टी मिट जायेगी। पर यह दोष नित्य पाठ का नहीं,

मनन न करने का है।

१८. वासना से छुटकारा ही मोक्ष है।

१९. जीवन के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने की कला या युक्ति को ही योग कहते हैं।

२०. स्वधर्म में स्वदेशी धर्म, स्वजातीय धर्म और स्वकालीन धर्म का समावेश होता है। ये तीनों मिल कर स्वधर्म बनते हैं।

२१. जो सात्विक कर्म सहज और स्वाभाविक रूप में सामने आ जायं तो वे सदोष होते हुए भी त्याज्य नहीं हैं। दोष होता है तो होने दो। उस दोष से पीछा छुड़ाना चाहोगे तो दूसरे दोष पल्ले आ पड़ेंगे। जैसे खेती करने से कुछ जीव तो मरते ही हैं।

२२. परमेश्वर हजार फनों के शेषनाग पर सोते हुए भी शान्त है। इसी तरह संत हजारों कर्म करते हुए भी रत्ती भर क्षोभतरंग अपने मानस सरोवर में उठने नहीं देते।

२३. जन्मतः ही हम अपने सिर पर ऋण लेकर आते हैं,इस ऋण को चुकाने के लिए हमें यज्ञ अर्थात् सेवा करनी चाहिए, परोपकार नहीं, सेवा से ही हम अपना ऋण चुका सकते हैं।

२४. ओं का अर्थ है सातत्य, तत् का अर्थ है अलिप्तता और सत् का अर्थ है सात्विकता। हमारी साधना में सातत्य, अलिप्तता, और सात्विकता होनी चाहिए।

२५. आहार परिमित होना चाहिए। आहार कौन-सा हो इसकी अपेक्षा यह बात अधिक महत्व की है कि वह कितना हो। ऐसा नहीं है कि आहार का चुनाव महत्व की बात नहीं है, परन्तु हम जो आहार लेते हैं वह उचित मात्रा में है या नहीं, यह उससे भी अधिक महत्व की बात है।

२६. गांधी के शिक्षण का निचोड़ मैंने तीन शब्दों में पाया -
(१) सत्य :- जीवन का लक्ष्य (२) संयम :- जीवन की पद्धति
(३) सेवा :- जीवन का कार्य

२७. सब धर्मों का सार सत्य, प्रेम, करुणा में है।

२८. सारे विश्व के मानव एक हैं। सबके सम्मिलित परिवार का नाम विश्व है।
२९. धीरे-धीरे देशों की सरहदें अब टूटने वाली हैं।
३०. इस दुनिया में संकुचित भावना अब टिक नहीं सकती।
३१. बुद्धि और भावना का समन्वय ही विवेक है।
३२. परिश्रम हमारा देवता है।
३३. विज्ञान युग में छोटे-छोटे फिरके नहीं टिकेंगे।
३४. "अतिथि देव" का अर्थ है- समाज देवता।
३५. जय जगत हमारा मंत्र और ग्राम स्वराज्य हमारा तंत्र है।
३६. सियासी पार्टियों के नेता ऐसे गिरने वाले हैं, जैसे पतझड़ में पत्ते।
३७. दुनिया के मसले गांधी विचार से हल होंगे। गांधी विचार का अर्थ है- सत्य जीवन का लक्ष्य, संयम जीवन की पद्धति और सेवा जीवन का कार्य हो।
३८. ऋण चुकाने की भावना से प्रत्यक्ष कर्म करना यज्ञ है।
३९. तन-मन-धन व साधन से दूसरों की सहायता करना दान है।
४०. शरीरस्थ विकार शुद्धि के लिए त्याग करना तप है।
४१. सब कुछ करते हुए भी कुछ न करने की प्रतीति होना योग है।
४२. कुछ भी न करते हुए सब करना संन्यास है।
४३. हिंसा में रुचि लेने वाली मानसिकता बदलने से ही अंहिसा की प्रतिष्ठा होगी।
४४. घर में ताड़न, समाज में बहिष्कार, सरकार में दण्ड और धर्म-सम्प्रदाय में निष्कासन को मान्यता देने का मतलब है कि हमारी श्रद्धा हिंसा पर ही है, अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता नहीं है।
४५. विज्ञान और अंहिसा का योग होगा तो दुनिया स्वर्ग बनेगी। विज्ञान और राजनीति का योग होगा तो दुनिया खत्म होगी।
४६. जिसमें समाधान हो, वही साम्य है।
४७. खादी में गुप्तदान सिद्ध होता है।

❑❑❑

(२१)

महामना मालवीय कृत हिन्दू धर्मोपदेश

अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम्।
वैकुण्ठं हि च तद्रूप तस्मै धर्मात्मने नमः।।

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम्।।१।।
ग्रामे ग्रामे सभा कार्य्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभाः।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वमहोत्सवः।।२।।
अनाथा विधवा रक्ष्या मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्य संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्।।३।।
स्त्रीणां समादरः कार्यः दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः।।४।।
अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा।
सेव्यं सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा।।५।।
कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातुचित्।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः।।६।।
स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेष्ववस्थितः।
एक एवाऽद्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः।।७।।
पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानाञ्च मंगलम्।
दैवतं देवतानां च लोकानां योऽव्ययः पिता।।८।।
उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दूधर्मोऽयमुच्यते।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वभूतहिते रतैः।।६।।

कलियुग में एकता में ही शक्ति है – परमेश्वर को प्रणाम कर सब प्राणियों के उपकार के लिए बुराई करने वालों को दबानें और दण्ड देने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए धर्म के अनुसार संघटन व मिलाप कर गाँव गाँव में सभा करनी चाहिए। गाँव गाँव में कथा बिठानी चाहिए। गाँव गाँव में पाठशाला और अखाड़ा खोलना चाहिए और पर्व पर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिए।

सब भाइयों को मिलकर अनाथों की, मंदिरों की और लोकमाता गौ की रक्षा करनी चाहिए और इन कामों के लिए दान देना चाहिए। स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए। दुखियों पर दया करनी चाहिए। उन जीवों को नहीं मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी हों अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन व प्राण पर हमला करते हों और जो किसी के घर में आग लगाते हों। ऐसे लोगों को मारे बिना यदि अपना या दूसरों के प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है। स्त्रियों को और पुरुषों को भी निडरपन, सच्चाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, धीरज और क्षमा को अमृत के समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है, और कर्मों के अनुसार ही प्राणी को बार बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है।

घट-घट में बसने वाले विष्णु – सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिए। जिनके समान दूसरा कोई नहीं है, जो एक ही अद्वितीय हैं और जो दुःख और पाप के हरण करने वाले शिवस्वरूप हैं, जो सभी पवित्र वस्तुओं से अधिक पवित्र, जो सब मंगल कर्मों के मंगल स्वरूप हैं, जो सब देवताओं के देवता हैं और समस्त संसार के एक अविनाशी पिता हैं। सब धर्मों से उत्तम इसी धर्म को हिन्दू धर्म कहते हैं। सब प्राणियों का हित चाहते हुए धर्म की रक्षा और प्रचार करना हमारा धर्म है। इति शिवम्।।

□□□

(२२)

महापुरुषों के कुछ स्मरणीय उद्धरण

१. मनुष्य युद्ध में सहस्रों पर विजय पा सकता है, लेकिन जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर लेता है, वही सबसे बड़ा विजयी है। – महात्मा बुद्ध

२. ईश्वर ने हमें दो कान दिए हैं और दो आँखें, पर जीभ केवल एक ही--इसलिए कि हम बहुत अधिक सुनें और बहुत अधिक देखें, लेकिन बोलें बहुत कम। – सुकरात

३. जब कभी मुझे कोई अच्छा काम करने का मौका मिलता है तो, मेरा पहला काम भगवान की प्रार्थना करना होता है। मैं कहता हूँ–हे प्रभो, तुम मेरे साथ रह कर मेरी मदद करो। तुम्हारे बिना अकेले मुझसे यह काम नहीं होने का। जब कभी मैंने यह मांग की है, तभी मैंने अपने अन्दर खूब ताकत पाई है।

शोर-गुल के साथ, ऊँची आवाज में प्रार्थना करने की जरूरत नहीं। भगवान दूर थोड़े ही है। वह तो नजदीक है। ऊँची-ऊँची दीवालों वाले मंदिरों में नहीं, हमारे हृदय रूपी मंदिर में ही तो उसका वास है। उसे ढूंढने को इधर-उधर क्यों भटकें ? जहां हम हैं, वहीं उससे मिल कर बात-चीत हो सकती है। – राजगोपालाचार्य

४. महाभारत एवं रामायण में क्या अन्तर है, इसका स्पष्टीकरण देते हुए बताया गया :

महाभारत जैसा होता है, रामायण जैसा होना चाहिए।

– पूज्य श्री रामकिंकर जी महाराज

५. निराशा में प्रतीक्षा अन्धे की लाठी है। – प्रेमचंद

६. जीवन रोने के लिए नहीं है, जीने के लिए तो हंसना ही चाहिए। रोना पाप है, कोई क्यों रोये ? जीवन का प्रवाह जैसे बहता है बहने देना चाहिए। – पं० सिद्ध विनायक

७. दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुखदायी होता है।

– प्रेमचंद

८. अच्छी दवा, चाहे वह कड़वी हो क्यों न हो, रोग को दूर कर देती है। सहृदयतापूर्ण सलाह, चाहे वह कटु ही क्यों न हो, हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। – लुई फिशर
९. दुनिया में जो इतनी बुराई फैली हुई है उसका दोष केवल बुरा काम करने वालों पर ही नहीं है, बल्कि दोष उन अच्छे आदमियों का भी है जो बुरे काम करने वालों की खुशामद करने और उन्हें खुश करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। – लुई फिशर
१०. लोग बुरे को देखते हैं, तभी उन्हें पता लगता है कि क्या अच्छा है। बुरा न हो तो क्या पता लगे कि क्या अच्छा है। – अज्ञेय
११. पानी से न डरना एक बात है और बिना तैरना जाने अथाह समुद्र में कूद पड़ना दूसरी बात है। दूसरी दशा में आदमी मूर्ख कहा जायेगा। – सर्वदानन्द
१२. जितना ही कम ज्ञान होता है, उतनी ही अच्छी नींद आती है। – मैक्सिम गोर्की
१३. मनुष्य जैसा जीवन व्यतीत करता है, वैसे ही उसके विचार हो जाते हैं। – मैक्सिम गोर्की
१४. बहस में अक्सर वही जीतता है जो ऊंचा बोल पाता है। – यशपाल
१५. अपनी भूल को स्वीकार करने में जो गौरव है, वह अन्याय को चिरायु रखने में नहीं। – प्रेमचन्द
१६. डींग मारना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। – राहुल सांकृत्यायन
१७. जिनमें कोई गुण नहीं होता वे ही बहुत बकवास करते हैं। – विविध
१८. बूढ़े से मत पूछो, पूछना हो तो अनुभवी से पूछो। – रूसी कहावत
१९. लड़ाई के पहले दो आदमी घमण्ड करते हैं और बाद में केवल एक। – रूसी कहावत
२०. प्रत्येक कड़कड़ाती बिजली नहीं गिरती, और गिरती भी है तो आवश्यक नहीं कि हम पर ही गिरे। – रूसी कहावत
२१. ऐसे व्यक्ति जो कभी गलतियाँ नहीं करते, वही हैं जो कभी कुछ नहीं करते। – विविध

२२. केवल दो ही मनुष्य सम्पूर्ण रूप से भले हैं, एक वह जो मर चुका है, और दूसरा वह जो कभी पैदा नहीं हुआ है। - एक चीनी कहावत

२३. वह मनुष्य जो किसी समस्या के दोनों पहलुओं पर विचार नहीं करता, बेईमान है। - लिंकन

२४. मानव का गुण है विश्वास व शैतान का गुण है शंका। - विविध

२५. प्रत्येक मनुष्य को जीवन में केवल एक बार अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर मिलता है, और वही भविष्य का निर्णय कर देता है। - प्रेमचन्द

२६. अपनी भूल अपने ही हाथों सुधर जाय तो यह उससे कहीं अच्छा है कि कोई दूसरा उसे सुधारे। - प्रेमचन्द

२७. प्रसिद्धि श्वेत वस्त्र के सदृश है, जिस पर एक धब्बा भी नहीं छिप सकता। - प्रेमचन्द

२८. जो गुणी होते हैं वे अपनी जिम्मेदारियों की बात सोचते हैं, जो गुणहीन होते हैं वे अपने अधिकारों का नाम रटा करते हैं। - कवीन्द्र-रवीन्द्र

२९. जिसमें दया नहीं, उसमें कोई सद्गुण नहीं। - हजरत मुहम्मद

३०. संसार में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सरल और निश्चित उपाय यही है कि मनुष्य वास्तव में जैसा है, वैसा ही अपने को व्यक्त करे। - सुकरात

३१. धमकी देने वाला सदा कायर होता है। शक्तिवान पुरुष कभी धमकी नहीं देता, वह तो जो चाहता है, करके दिखा देता है। - बर्नार्ड शा

३२. निर्लज्ज हारकर भी नहीं हारता, मर कर भी नहीं मरता। - जयशंकर प्रसाद

३३. मनुष्य भावों और विचारों का पुतला है। जब भावों और विचारों में परिवर्तन आ गया हो तो वह व्यक्ति पहला व्यक्ति ही नहीं रहता। - यशपाल

३४. गरीब के कान का सच्चा सोना भी सन्देह से देखा जाता है किन्तु अमीर के गले में कोई पीतल भी डाल दे तो लोग उसे पीतल कहने का साहस न करेंगे। - दिनकर

३५. सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। - दिनकर

३६. जो जीवन में कुछ नहीं कर पाते, वे आलोचक बन जाते हैं। - अज्ञात

३७. दरिद्रता आलस्य का पुरस्कार है। - डच कहावत

३८. अन्याय करने वाला इतना दोषी नहीं है, जितना उसे सहन करने वाला। - लोकमान्य तिलक

३६. अन्याय सहने से अन्याय करना ज्यादा अच्छा है। - अरस्तू

४०. अन्याय में सहयोग करना अन्याय करने के ही समान है। - प्रेमचन्द

४१. व्यस्त आदमी के पास आंसू बहाने का समय नहीं होता। - बायरन

४२. सबसे अच्छे लोग वे नहीं हैं, जो मौकों की बाट जोहते हैं, बल्कि वे हैं, जो मौकों को अपना दास बना लेते हैं। - ई०एच०चेपिन

४३. मनुष्य के लिए जीवन में सफलता का रहस्य हर आने वाले अवसर के लिए तैयार रहना है। - डिजरायली

४४. समय और सागर की लहर किसी की प्रतीक्षा नहीं करती। - रिचर्ड ब्रैथव्हेट

४५. विनय से पात्रता प्राप्त होती है। - हितोपदेश

४६. जो अपने नियम नहीं बनाता, उसे दूसरों के बनाये नियमों पर चलना पड़ता है। - हरिभाऊ उपाध्याय

४७. संकट में ही धैर्य और धर्म की परीक्षा होती है। - प्रेमचंद

४८. मूर्ख स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं, किन्तु वास्तविक बुद्धिमान स्वयं को मूर्ख ही समझते हैं। - शेक्सपीयर

४६. थोड़ा पढ़ना और अधिक सोचना, कम बोलना और अधिक सुनना यही बुद्धिमान बनने का उपाय है। - रवीन्द्र नाथ ठाकुर

५०. यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है, तो तुम्हारा आचरण भी सुंदर होगा, यदि तुम्हारा आचरण सुंदर है, तो तुम्हारे घर में शांति रहेगी, यदि घर में शांति है तो राष्ट्र में सुव्यवस्था रहेगी और यदि राष्ट्र में सुव्यवस्था है तो समस्त विश्व में शांति और सुख रहेगा। - कन्फ्यूसियस

५१. मेरा ध्येय अपनी सभ्यता की विशिष्टता को बनाए रखना है।

५२. मैं नहीं चाहता कि मेरा मकान सभी ओर दीवालों से घिरा रहे और मेरी खिड़कियां बंद रहें। मैं चाहता हूँ की सभी देश की संस्कृतियों का प्रवाह हमारे मकान के अंदर यथासंभव स्वतंत्रता के साथ बहे, लेकिन मैं उनमें से किसी एक के भी प्रवाह में बह जाने से इंकार करता हूँ।

५३. जरूरत से ज्यादा चीजें इस्तेमाल करना चोरी है।

५४. अनुदानों की अपेक्षा लोगों को काम देना बेहतर है।

५५. मैं न केवल भारत के, बल्कि संसार के समस्त लोगों से प्रेम करता हूँ, जो विभिन्न धर्मों को मानते हैं। मैं चाहता हूँ कि वे एक दूसरे के सम्पर्क में आएं और अधिक अच्छे बनें। यदि ऐसा होता है तो दुनिया आज से बहुत अच्छी होगी।

५६. संसार में अब ऐसी सरकारों की मांग है, जो नैतिक सिद्धांतों से प्रेरित हों और सुविधा के लिए नहीं, बल्कि औचित्य की दृष्टि से निर्णय ले सकें।

५७. प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने का अधिकार है और इसलिए उसे पेट भरने के लिए भोजन, आवश्यकतानुसार तन ढंकने के लिए वस्त्र और और रहने के लिए मकान जुटाने का अधिकार है। किसी भी सुव्यस्थित समाज में रोटी कमाना सबसे सुगम बात होनी चाहिए और हुआ करती है। निःसंदेह किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नहीं है कि उसमें कितने लखपती लोग रहते हैं बल्कि यह है कि जन साधारण का कोई व्यक्ति भूखों तो नहीं मर रहा।

५८. मैं अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई के सिद्धान्त में विश्वास नहीं

करता। उसका अर्थ यह हुआ कि ५१ प्रतिशत लोगों की कल्पित भलाई के लिए ४६ प्रतिशत लोगों के हित का बलिदान किया जा सकता है अथवा किया जाना चाहिए। यह एक निर्मम सिद्धांत है। इससे मानवता को नुकसान पहुंचा है। सबकी अधिकतम भलाई का सिद्धांत ही एकमात्र सच्चा तथा उच्च मानवीय सिद्धांत है जो सर्वाधिक आत्म-त्याग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। – महात्मा गांधी

५६. बिना किसी प्रगति के गुजरा हर पल व्यक्ति को उसकी कब्र के निकट पहुंचाता हर कदम है। – श्री अरविंद

६०. आप जो देते हैं, वह सागर में बूंद समान ही हो सकता है, पर उस बूंद के बिना सागर अधूरा है। – मदर टेरेसा

६१. किसी राज्य को चलाने के लिए अच्छे कानूनों की उतनी जरूरत नहीं होती जितनी कि अच्छे अधिकारी की। – अरस्तू

६२. वही सरकार अच्छी है, जो सबसे कम शासन करती है। – थॉरो

६३. अगर पुलिस पर ही भरोसा रखोगे तो याद रखो कि स्वराज्य कभी न मिलेगा।...याद रखो, कभी कोई शेर की कुर्बानी नहीं देता, कुर्बानी के लिए बकरे को ही चुना जाता है। कमजोर होना ही मुसीबत का घर है। – मदन मोहन मालवीय

६४. मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा क्योंकि इसमें वह शक्ति है कि ये जहाँ होंगी, वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।

– बाल गंगाधर तिलक

६५. आदमी पहले शराब पीता है, फिर शराब शराब को पीती है-अर्थात् बार-बार पीने की इच्छा होती है और अंत में शराब आदमी को ही पीने लगती है। – एक जापानी कहावत

(२३)

पूज्य श्री रामसुख दास जी महाराज के अमृत-विन्दु

१. जिसको हम सदा अपने पास नहीं रख सकते, उसकी इच्छा करने से और उसको पाने से क्या लाभ ?

२. जो दूसरों की सेवा नहीं करता और भगवान को याद नहीं करता, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी ही नहीं है।

३. अपने लिए सुख चाहने से नाशवान सुख मिलता है और दूसरों को सुख पहुंचाने से अविनाशी सुख मिलता है।

४. विचार करो, क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे ?

५. चेत करो। यह संसार सदा रहने के लिये नहीं है। यहां केवल मरने-ही-मरने वाले रहते हैं। फिर पैर फैलाये कैसे बैठे हो ?

६. शिष्य दुर्लभ है, गुरु नहीं। सेवक दुर्लभ है, सेव्य नहीं। जिज्ञासु दुर्लभ है, ज्ञान नहीं। भक्त दुर्लभ है, भगवान नहीं।

७. भगवान सब जगह मौजूद है, पर भक्त चाहिये। खम्भे कई हैं, पर प्रह्लाद चाहिये।

८. संसार विश्वास करने योग्य नहीं है, प्रत्युत् सेवा करने योग्य है।

९. जैसे मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता, ऐसे ही मनुष्य शरीर मिलने पर भी सत्संग बार-बार नहीं मिलता।

१०. संसार का काम तो और कोई भी कर लेगा, पर अपने कल्याण का काम तो खुद ही करना पड़ेगा, जैसे भोजन और दवाई खुद को ही लेनी पड़ती है।

११. संसार के काम में तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर भगवान के काम में नफा-ही-नफा होता है, नुकसान होता ही नहीं।

१२. पारमार्थिक उन्नति करने वाले की लौकिक उन्नति स्वतः होती है।

१३. कुछ भी लेने की इच्छा भयंकर दुःख देने वाली है।

१४. आप अपनी अच्छाई का जितना अभिमान करोगे, उतनी ही बुराई पैदा होगी। इसलिये अच्छे बनो, पर अच्छाई का अभिमान मत करो।

१५. जब तक अपने में राग-द्वेष हैं, तब तक तत्वबोध नहीं हुआ है, केवल बातें सीखी हैं।
१६. अगर भगवान की दया चाहते हो तो अपने से छोटों पर दया करो, तभी भगवान दया करेंगे। दया चाहते हो, पर करते नहीं-यह अन्याय है, अपने ज्ञान का तिरस्कार है।
१७. "करेंगे" - यह निश्चित नहीं है, पर "मरेंगे" - यह निश्चित है।
१८. दरिद्रता मिटानी है तो अपनी इच्छाओं को समाप्त कर दो।
१९. संसार में दूसरों के लिये जैसा करोगे, परिणाम में वैसा ही अपने लिये हो जायेगा। इसलिये दूसरों के लिये सदा अच्छा ही करो।
२०. विचार करें, जिससे आप सुख चाहते हैं, क्या वह सर्वथा सुखी है? क्या वह दुःखी नहीं है ? दुःखी व्यक्ति आपको सुखी कैसे बना देगा?
२१. जो भी करें, साधन में दृढ़ता रहनी चाहिए।
२२. ध्येय की प्राप्ति तक प्रयास जारी रहे।
२३. प्राप्ति तक सन्तोष नहीं रहना चाहिए।
२४. सांसारिक पदार्थों में सन्तोष, आध्यात्मिक कार्यों में असन्तोष अनुभव करें ?
२५. मनुष्य शरीर का उद्देश्य.. है-ज्ञातव्य ज्ञात हो जाए, प्राप्तव्य प्राप्त हो जाए।
२६. संसार के लिए सेवा एवं परमात्मा के लिए प्रेम ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।
२७. भोग तथा संग्रह में जब तक लिप्त रहेगा, परमात्मा प्राप्त नहीं होगा।
२८. बालक के लिए मां-मां, वैसे ही भक्त के लिए भगवान-भगवान।
२९. भगवान का इष्ट भक्त तथा भक्त का इष्ट भगवान।
३०. मां का प्रेम मारते समय ज्यादा है। उसी प्रकार भगवान की प्रताड़ना अधिक प्रेम का परिचायक है।
३१. अपनेपन के कारण ही मां मारती है।
३२. जब यह जीव कामनारहित हो जाता है तो ब्रह्म हो जाता है।

३३. मन दुःखी है विकारों से। विचार, क्रिया एवं चिन्तन से ही मन के विकार समाप्त होंगे।
३४. एकाग्र मन मित्र है। चंचल मन शत्रु है।
३५. मनुष्य की यात्रा मनुष्य से देवत्व की ओर है।
३६. सांसारिक पूंजी वाला आध्यात्मिक पूंजीवाले के सामने नतमस्तक हो जाता है।
३७. हमारी इन्द्रियां हमारे लिए साधक हों, बाधक नहीं।
३८. जीवन जीने के लिए है, ढोने के लिए नहीं।
३९. अर्थ व काम को धर्म और मोक्ष से नियंत्रित करो। आपके पास है क्या? धन से ही सब कुछ नहीं।
४०. धन से आप मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन सुख नहीं।
४१. धन से आप पुस्तक प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन बुद्धि नहीं।
४२. धन से आप बिस्तर प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन नींद नहीं।
४३. धन से आप गेरुआ वस्त्र प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन साधुता नहीं।
४४. धन से आप रोटी प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन भूख नहीं।
४५. धन से आप ऐश-आराम प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन शान्ति नहीं।
४६. धन से आप मकान प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन परिवार नहीं।
४७. धन से आप दवा प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन स्वास्थ्य नहीं।
४८. धन से आप मंदिर प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन भगवान नहीं।

मुक्ति क्या है

जो वस्तु सदा हमारे साथ नहीं रह सकती और जिसके साथ हम सदा नहीं रह सकते, जिस पर हमारा आधिपत्य नहीं चलता, जो मिली है तथा बिछुड़ने वाली है, वह वस्तु अपनी कैसे हो सकती है ? कदापि नहीं हो सकती। जो वस्तु अपनी है ही नहीं, उसकी कामना कैसे होगी ? उसके त्याग का अभिमान भी कैसे आयेगा? उसको अपना मान लिया- यह बेईमानी थी। उसका त्याग कर दिया तो केवल अपनी बेईमानी का ही त्याग किया। इसमें अभिमान किस बात का ? बेईमानी के त्याग का नाम ही मुक्ति है।

(२४)
संत श्री मोरारी बापू की वाणी

१. गीता योगशास्त्र है, रामायण प्रयोगशास्त्र है, उपनिषद संयोगशास्त्र है। श्रीमद्भागवत वियोगशास्त्र है।
२. बिना ताप के भोजन भी सुपाच्य नहीं होता। ठीक उसी प्रकार बिना पापसंताप एवं कठिनाइयों के भजन भी नहीं पक्का होता।
३. कठिनाइयों को, दुःख को प्रभु का प्रसाद समझ ग्रहण करने की आवश्यकता है। दुःख और सुख की व्याख्या करते हैं- स्वीकार्य दुःख ही सुख है और अस्वीकार्य सुख ही दुःख है।
४. जो शुद्ध हो जाते हैं वे, सिद्ध होने का परिश्रम नहीं करते।
५. ध्यान लगाना ही संकट से मुक्ति है।
६. प्रभु की विस्मृति ही संकट है।
७. सरस वृत्ति ही सरस्वती है।
८. शिक्षक जो सीखा है, वही सिखाता है।
९. आचार्य वह है जिसने जो सीखा है, उसे आचरण में उतार कर सिखावे।
१०. ज्ञान विज्ञान का जो समन्वय करे, वही ऋषि है।
११. मुनि वह है जो मौन बैठे-बैठे सामने वाले का सन्देह समाप्त करे।
१२. गुरु का हाथ ही अपना साथ है।
१३. गुरु का चरण ही हमारी शरण है।
१४. गुरु की आँख ही हमारी साख है, कृपा-दृष्टि है।
१५. गुरु का कण्ठ ही शिष्यों का बैकुण्ठ है।
१६. कोई शुद्ध बुद्ध महापुरुष बुला ले तो समझो वही वैकुण्ठ है।
१७. सिद्ध वह है जिसका श्रद्धा विश्वास एकदम पक्का है।
१८. जो निन्दा करे, वह विषयी शिष्य है।
१९. भजन जब पकता है तो सब में हरिहर दीखता है।
२०. पवित्रता + प्रसन्नता = परमात्मा
२१. नफरत किसी से न करे।

२२. पहले नेत्र शुद्ध करो, तो ही वाणी शुद्ध होगी।

२३. हमारी अभिव्यक्ति हमारी अनुभूति बन जाये तो जीवन में आनन्द आ जाए।

२४. भूल करे सो मानव, भूल कबूल करे वह महामानव, भूल जाहिर कर क्षमा माँगे वह महान मानव, भूल दूसरा करे, भोगे दूसरा वह महात्मा। किसी में भूल दिखाई ही न दे, वह परमात्मा।

२५. जीव को विवेक चाहिए- बिन सत्संग विवेक न होई।

२६. भगवान दोषी पर उतने नाराज नहीं होते, जितने दम्भी पर। बच्चों में दम्भ नहीं है।

२७. सम एवं सरल चित्त ही संत का लक्षण है।

२८. जहाँ संकल्प पक्का होता है, वहाँ विकल्प की कोई गुंजाइश नहीं।

२६. द्वैत को ही माया कहते हैं सांख्य सिद्धान्त में।

३०. हरिनाम हल्का होकर जपो, बोझिल होकर नहीं।

३१. आदमी को हार्दिक व बौद्धिक दोनों होना चाहिए। विचार और प्रेम दोनों की आवश्यकता है।

३२. अपमान की भूख जगाओ तो ही सम्मान की भूख शान्त होगी।

३३. अपमान जिसका पच जाता है, सम्मान की भूख समाप्त हो जाती है।

३४. यह तन विष की वेल रे, गुरु अमृत की खान।

३५. नमन का अर्थ मन नहीं बचा, न मन।

३६. धीर धरना सीखो। सबरी ने, अहिल्या ने धीरज रखा। धीरज, धर्म, मित्र और नारी की कसौटी विपत्ति में, सम्पत्ति में नहीं।

३७. प्रभु ने जाल फेंका हमें फंसाने हेतु लेकिन कोई कोई फंसता है, बाकी पानी के साथ निकल जाते हैं।

३८. सत्संग से कर्म की निवृत्ति है।

३६. ज्ञानी का मतलब सबमें ब्रह्म दिखाई दे।

४०. हमारी भक्ति निष्ठा तभी सफल है, जब वह गोविन्द को प्रसन्न करे।

४१. सफलता की पृष्ठभूमि संकल्प है।

४२. अकेलेपन का वोध न होना ही विरक्ति है।

४३. विचार करो, क्या ये दिन सदा ऐसे ही रहेंगे ?
४४. न कोई खाली हाथ आया और न खाली हाथ जायेगा। भरे हाथ आया और भरे हाथ ही जायेगा।
४५. मन का निग्रह न हो भले, इन्द्रियों का दमन करो।
४६. गुरु, वेदान्त के वाक्यों में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है।
४७. ब्रह्मचारी वह है जो शुक्र का रक्षण करे और ब्रह्म की तरह आचरण।
४८. मुनि वह जो मनन करता रहे।
४९. द्विज यानि जिसका दूसरी बार जन्म हो गया। पहला माँ के गर्भ से, दूसरा गुरु के हृदय से।
५०. मन से राम का ध्यान, वचन से राम का नाम, कर्म से राम का काम।
५१. ध्यानी मन्द होता है, तीव्र नहीं होता। तपस्वी तीव्र होता है।
५२. विप्र वह है जिसमें विवेक की प्रधानता हो।
५३. सम्पन्न जब प्रपन्न (शरणागत) बन जाता है तो प्रसन्नता आ जाती है।
५४. तप से तप्त हो जायेगा, अतः आँसुओं से शीतल करो।
५५. गुरु चेला बनाता है या चेला गुरु बनाता है ? उत्तर है शिष्य गुरु के शरण जाता है और गुरु शरणागति स्वीकार करता है।
५६. सास याने स-आस, जो बहुत आस रखे वह सास।
५७. शरणागति का भाव ही गुरु का सृजन करता है।
५८. चिड़ियाँ हिलती डालियों पर बैठती हैं लेकिन गिरने का भय नहीं। कारण, उड़ने के लिए पंख है।
५९. ज्ञान तीन प्रकार से मिला-शास्त्र से, गुरु से और आत्मानुभूति या स्वाध्याय से।
६०. रामचरित मानस का जो श्रवण करेगा वह विश्राम करेगा। जो आचरण में उतारेगा वह परम विश्राम को प्राप्त करेगा।
६१. स्वामी से सेवक बड़ा। राम ने बाँध बाँधा, हनुमान कूद गया।
६२. राम से अधिक राम कर दासा।
६३. संकट से हनुमान जी छुड़ा सकते हैं, अगर मन-वचन और कर्म से

६४. पर्वताकार होना ध्यान की फलश्रुति है।

६५. सफल तो कोई भी हो सकता है। हमें सुफल होना है।

६६. वृक्ष में फल तो सभी प्रकार के लगते हैं लेकिन स्वादिष्ट फल ही सुफल है।

६७. ज्ञान देवता का आभूषण ध्यान है। ध्यानी कभी असावधान नहीं हो सकता। ध्यान का आभूषण त्याग है। त्याग का आभूषण शान्ति। शान्ति आयी तो त्याग फलित हुआ।

६८. भक्ति-परक वैराग्य ही श्रेष्ठ चीज को पकड़ना है।

६९. दो व्यक्ति जब मिले तब संघर्ष बढ़ा, दो व्यक्तित्व जब मिले तो समझदारी बढ़ी। दो विभूतियाँ या अनुभूतियाँ मिलें तो समर्पण होता है।

७०. व्याख्या परायी होती है। अनुभूति अपनी होती है।

७१. अद्भुत हो, अनुभूत हो एवं अवधूत हो तो सन्त है।

७२. ध्यानी चंचलता से मुक्त हो जाता है।

७३. आचरण के कारण चरण की महिमा है।

७४. जीव सुख को भोगता है। शिव सुख को पीता है।

७५. सकाम रति का अर्थ है वसन्त और निष्काम रति का अर्थ है सन्त।

७६. मन की, कपि की चंचलता समान है-अकारण।

७७. बाह्य शुद्धि एवं आन्तरिक पवित्रता भगवान को आमन्त्रण देती है।

७८. हनुमान जी का आश्रय करने वाला निर्भीक होना चाहिए।

७९. ध्यान से मन न हटे तो संकट की तरफ ध्यान भी नहीं जाता।

८०. हनुमान का बल अनन्यता का बल है।

८१. जिसका सुमिरन करो, उसके प्रति विश्वास दृढ़ होना चाहिए।

८२. महावीर वह जो भोजन, भय, मैथुन और संचय की प्रवृत्ति से मुक्त हो गया।

८३. काम वैराग्य को मूर्छित कर सकता है, समाप्त नहीं।

८४. महत्व कर्म का नहीं, उद्देश्य का है।

८५. वैद्य वह है जो दूसरे का दोष दर्शन कर दूर करे।

८६. सतियों का बल सतीत्व से, साधुओं का बल साधना से।
८७. सम्पत्ति का अतिरेक ही विपत्ति का कारण।
८८. आभूषण भुजंग न हो जाए।
८९. पुरुषार्थ करो, प्रार्थना करो, प्रतीक्षा करो।
९०. त्रिलोक को पावन करने वाली -रामकथा।
९१. जो सुमिरत हनुमत बलबीरा, संकट कटै मिटे सब पीरा।
९२. संकट गया तो पीड़ा गयी, पीड़ा गयी तो संकट गया।
९३. वक्ता बहिर्मुख होना चाहिए और श्रोता अन्तर्मुख।
९४. आपको आनन्द आता है, आप की तन्मयता के कारण।
९५. तुम्हारे अन्तर्लिंग का अभिषेक जब भजन से होगा, तब आनन्द आएगा।
९६. कथा की तुलना किसी से मत करो, तुलना अपराध है।
९७. सत्संग सत्संग है, वह निरुपम है कथा के समान।
९८. उपमा के सामने उपमेय छोटा हो जाता है।
९९. जागना हो तो जागो, सोना हो तो सोवो, जो करो पूर्णता में करो।
१००. संदेह को दबाओ मत, मिटाओ।
१०१. बुद्धिमान संदेह को दबा देगा, सद्गुरु संदेह को मिटा देगा।
१०२. कुछ बातें चेतना के प्रवाह में जानी जाती हैं, बौद्धिक प्रवाह में नहीं।
१०३. स्वभाव को बदलना चाहो तो प्रभु के सामने रोवो। रोने से विकारों का रेचन होता है और तनाव से मुक्ति मिलती है।
१०४. क्रोध का समापन उसके प्रवाह को बनाने वाले लोभ और मोह के दोनों किनारों को तोड़ने से होगा।
१०५. बल देहवादी है, वीरता स्वभावगत होती है।
१०६. वीरता और धीरता पर बल दिया रामायण ने।
१०७. ज्ञान होने के बाद व्यक्ति किसी को अज्ञानी कहता ही नहीं।
१०८. जिसको बोध हो गया, उससे विरोध हो ही नहीं सकता।
१०९. दूसरे में गुण दिखाई दे वह दर्शन है, दूसरे को अपना गुण दिखावे, वह प्रदर्शन है।

११०. ज्ञान और विवेक, अभिमान तथा मात्सर्य से ग्रसित न हो जाये।

१११. काम के कारण कामिनी दिखाई देती है।

११२. लोभ होने के कारण पैसा दिखाई देता है।

११३. काम और लोभ का संवेदन केन्द्र जब समाप्त हो जाता है, तब इन दोनों से जीव मुक्त हो जाता है।

११४. सज्जन से साधु, साधु से सन्त होने की क्रमिक यात्रा है।

११५. साँस रुक जायेगी चलते-चलते, समा बुझ जाएगी जलते-जलते।
दम निकल जाएगा रोशनी का, क्या भरोसा है इस जिन्दगी का।।
साथ देती नहीं यह किसी का, क्या भरोसा है इस जिन्दगी का।
हम रहे ना मोहब्बत रहेगी, दास्ताँ अपनी दुनिया कहेगी।
नाम रह जायेगा आदमी का, क्या भरोसा है इस जिन्दगी का।।

११६. मन की चंचलता मिटाने के लिए दीन हो जाओ।

११७. हीनता अभाव की देन है, दीनता स्वभाव की देन है।

११८. भक्ति आने की बात करती है, मुक्ति जाने की बात करती है।

११९. बौद्धिक सत्य हृदय का सत्य होना चाहिए।

१२०. तुम्हारी सक्रियता परिवार में अशान्ति न पैदा करे।

१२१. सत्संग से नित्यसम्बन्ध करो।

१२२. मांगना सबसे बुरी चीज है।

१२३. क्रोध में निर्णय मत करना।

१२४. गुरु से परदा न करो, कोई चीज छिपाओ नहीं।

१२५. निराश मत होना--प्रतीक्षा करो घटित होने तक।

१२६. देह से काम तक पहुँचेंगे-राम तक नहीं।

१२७. जब तक देह आदि रहेंगे, काम तक पहुँचेंगे। कारण इसकी प्राप्ति काम वासना के कारण हुई।

१२८. जीवन की गाड़ी ठीक न कर पाओ तो गुरु के गैरेज में ले जाओ।

१२९. सद्गुरु का काम भ्रान्ति मिटाना है।

१३०. साधु शान्ति, आनन्द देता है। सुख-दुःख तुम्हारे पास है।

१३१. दुःख अस्वीकार्य उपद्रव है। सुख स्वीकार्य उपद्रव है।
१३२. हमारी जानकारी भक्ति में बाधक न हो, अनुकूल होनी चाहिए।
१३३. अति बुद्धि-प्रधान मति प्रेम में बाधक है।
१३४. बुद्धि सुख दे सकती है, आनन्द नहीं।
१३५. पाँच-पाँच फुट के पचास गढ़े पानी नहीं दे सकते। २५० फुट का ट्यूबवेल पानी देगा।
१३६. स्त्री-धन-नास्तिक-बैरी के चरित्र का श्रवण न करो। प्रेम-धारा अवरुद्ध हो सकती है।
१३७. महापुरुषों में भेद तो है, विरोध नहीं।
१३८. वासना को न सुनो जो उपासना को रोके।
१३९. ऊष्म वस्तु जल्दी साफ करती है, ठंडी वस्तु ज्यादे ताजा रहती है। ज्ञान ऊष्म है, भक्ति शीतल है। ज्ञान दीप है, भक्ति जल है।
१४०. भक्ति ज्ञान के लिए साधक है, ज्ञान भक्ति के लिए साधक है। ज्ञान भक्ति में भेद है, विरोध नहीं।
१४१. ज्ञान प्रकट को व्यापक करता है एवं प्रेम व्यापक को प्रकट करता है।
१४२. भोजन भिक्षा भाव से करो।
१४३. देह को भोजन, भजन एवं सुमिरन से पुष्ट करो।
१४४. जो आहार भद्र न रहने दे, वह त्याज्य है।
१४५. भगवत् भजन में बाधक व्यसन त्याज्य है।
१४६. किसी का भी पाप न देखो और न सुनो अन्यथा वह पाप तुम्हें भी भ्रष्ट बनायेगा।
१४७. भजन करो, भोजन कराओ, सत्संग करो, कुसंग टालो। जहाँ मन, वहाँ हम। अन्न का कण, सन्तो का क्षण व्यर्थ न करो।
१४८. आत्मा की आवाज सुनो, उस पर अमल करो। यही ईश्वरीय आदेश है।
१४९. जो खुशी कल तुम्हें दुःखी करने वाली है, उसे आज ही त्याग दो।

१५०. जो डरता है कि मुझे कोई जीत न ले, वह जरूर हारेगा।
१५१. लोभी मनुष्य की कामना कभी पूरी नहीं होती।
१५२. काम की अधिकता नहीं, अनियमितता मनुष्य को मारती है।
१५३. अच्छी नसीहत मानना अपनी योग्यता बढ़ाना है।
१५४. कलियुग के कारण दोष है या दोष के कारण कलियुग है। तो उत्तर मिला दोष के कारण कलियुग है। कारण सतयुग में भी पिता हिरण्यकश्यपु ने पुत्र प्रह्लाद को कष्ट दिया एवं द्वापर में भरी सभा में द्रौपदी का चीर हरण हुआ।
१५५. असत्य, आसक्ति, बैर, सोना, शराब में कलियुग का निवास है। ये दोष नहीं, तो कलियुग है ही नहीं।
१५६. जीवन में क्रान्ति तो अनुभूति से घटित हो सकती है।
१५७. बाहर गरमी है लेकिन आप ए.सी. रूम में हैं, तो आपको गरमी नहीं सताएगी। इसी प्रकार सिद्ध पुरुष को बाह्य दोष नहीं सताते।
१५८. मैं अपने मकान को किराए पर नहीं दूँगा, याने असत्य, शराब, आसक्ति, बैर, सोना को अपने शरीर और मन में स्थान नहीं दूंगा।
१५९. धर्मशील राजा, लोकनेता एवं धर्मगुरु इन दोषों से बचें तो समाज और देश में अच्छे संस्कार स्थापित होंगे।
१६०. चौबीस घंटे न तो हम क्रोध कर सकते हैं और न झूठ बोल सकते हैं। अतः हमारा स्वाभाविक धर्म अक्रोध एवं झूठ न बोलना है।
१६१. सोने के भी बर्तन में छिद्र होगा तो जल नहीं रुकेगा।
१६२. असत्य, शराब, आसक्ति, बैर आदि ही हमारे छिद्र हैं।
१६३. गोली जब बन्दूक से छूटेगी तो ही मारक होगी। गोली को हाथ से मारने से हल्की चोट लगेगी।
१६४. धर्म का उपदेश आचरणनिष्ठ पुरुष के द्वारा जब किया जाता है तो वह गोली की तरह मारक होती है।
१६५. मैं ना, मैं ना कहा मोल भयो दस बीस।
बकरी ने मे-मे कहा कबीर कटायो शीष।

१६६. दास वह है जिसमें कोई आशा न हो, अपनी सेवा का परिणाम न चाहे।

१६७. शिव कथा है द्वार राम कथा में प्रवेश करने का।

१६८. अपनी आमदनी का दसवां भाग समाज सेवा व प्रभु में लगाओ।

१६९. पाप का विज्ञान समझ में आ जाए तो आदमी कितना स्वस्थ हो जाए। पाप का विज्ञान है भूल को स्वीकार करो।

१७०. दुःख एवं विपत्ति से आदमी की बुद्धि निर्मल एवं विशुद्ध होती है।

१७१. दुःख की पृष्ठभूमि में ही सुख की जागृति होती है।

१७२. पद से मद आता है। जिस दिन पादुका आ जाए तो शान्ति आ जाए।

१७३. दैवी सम्पदा के सारे गुण भगवान के श्रृंगार हैं।

१७४. सन्त सहानुभूति नहीं करते, समानुभूति करते हैं।

१७५. अकेले अगर शान्त नहीं रह पाओगे तो परिवार में कैसे शान्त रह पाओगे।

१७६. कोयला दबा तो हीरा हो गया। जो जितने अधिक समय तक दबा, वह हीरा हो गया।

१७७. तेज बोध-जनित हो, क्रोध जनित न हो।

१७८. अहिल्या ने साधना की, शबरी ने आराधना की। सीता के पास की स्त्रियों ने उपासना की।

१७९. धर्म को व्यावहारिकता से भिन्न मत करो।

१८०. मन पवित्र रहेगा तो बाहर की अपवित्रता भी नापसन्द होगी। पवित्रता चार प्रकार की : मानसिक, शारीरिक, पारिवारिक और आर्थिक।

१८१. दर्प माने स्थूल वस्तुओं का संग्रह। अभिमान माने जप-तप का अभिमान हो जाए।

१८२. एक दीप न जला सकोगे तो चलेगा मगर जले हुए दीप को कभी बुझाओ नहीं।

१८३. तीन बातें याद रखें - १. क्रोध खुद को नुकसान पहुंचाता है। २. लोभ दूसरों को नुकसान पहुँचाता है। तुम ज्यादा लोभ करते हो तो तुम्हारी सम्पत्ति तो ज्यादा हो जाएगी, भरी रहेगी, लेकिन तुम अपनी सम्पदा बढ़ाने के लिए औरों का नुकसान करते हो। लोभ की ज्यादा मात्रा दूसरों को नुकसान पहुंचाती है। क्रोध खुद को नुकसान पहुंचाता है। ३. काम परमात्मा की प्राप्ति में नुकसान कर देता है। क्योंकि पूरी चेतना, पूरी शक्ति दूसरी जगह चली जाती है। काम भगवान की प्राप्ति में बाधक हो जाता है।

१८४. मन, वचन और शरीर से पूर्ण रूप से संयमी रहना ही ब्रह्मचर्य है।

१८५. व्यवहार को शुद्ध करने के दो उपाय हैं - धीरज और प्रेम।

१८६. जीव मात्र को दुःख न देने की चेष्टा करना ही सर्वोत्तम धर्म है।

१८७. कलियुग में नाम-स्मरण और हरि कीर्तन से जीव मात्र का उद्धार होता है।

१८८. भाव शुद्धि होने पर हृदय में जो श्री हरि हैं, उनकी मूर्ति प्रकट हो जाती है।

१८९. ईश्वर को पाने का उपाय केवल विश्वास है। जिसे विश्वास हो गया, उसका काम बन गया।

१९०. जो यहां बोओगे वहीं वहां काटोगे। यहां अच्छा काम करोगे तो अच्छा पाओगे।

१९१. अपमान पूर्ण जीवन से मृत्यु अच्छी है।

१९२. नम्रता और छुटकारा धन से नहीं, धर्म से होता है।

१९३. नम्रता और प्रिय संभाषण ही मनुष्य के आभूषण हैं।

१९४. मन के रोगों का इलाज सद्गुरु के अलावा दूसरा कोई नहीं कर सकता।

१९५. विषयी जीव चिन्ता करता है, लेकिन साधक चिन्तन करता है और सिद्ध स्मरण या भजन करता है। भजन रूपी रस के जीवन में आते ही नीरसता स्वयं समाप्त हो जाएगी। इसलिए चिन्ता छोड़ो और भजन करो।

१९६. विश्वास कई जगह किया जा सकता है यथा मित्र, नौकर, सम्बन्धी, यहां तक कि ताले पर भी, किन्तु श्रद्धा केवल एक स्थान पर होती है और वह है इष्ट या सद्गुरु। श्रद्धा के आने से ही अभय का भाव आता है, किन्तु अभय का तात्पर्य सिर्फ यह नहीं है कि तुम किसी से डरते नहीं, वरन् यह भाव तब पूर्ण होगा जब तुमसे भी कोई न डरे।

१९७. जिनके हृदय में दया नहीं, आंख में सदाचार नहीं, व्यवहार में नीति नहीं, वह सद्गृहस्थ कैसे ?

१९८. दुःखी स्वजनों के आंसुओं को पोछो, आपको निश्चित नींद आयेगी।

१९९. लोग मंदिरों में मूर्तियों को कपड़े पहनाते हैं और उन्हे जेवरों से सजाते हैं परन्तु भगवान द्वारा बनाए गए इन्सान को ठुकराते हैं। लोग मूर्ति पूजा से पहले जब चलती फिरती नंगी मूर्तियों की दशा पर गौर करेंगे, तभी उन्हें प्रेम और भक्ति का प्रसाद प्राप्त होगा।

२००. कथा श्रवण का पुण्य बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। कथा श्रवण से मानव स्वभाव सुधरने में देर नहीं लगती। किन्तु अत्यन्त आवश्यक है कि अपने व्रत और नियम का पालन करते हुए कथा श्रवण किया जाए। कथा श्रवण व्यवहार भी सिखाता है। इससे जीवन में एक प्रकार की पूर्णता आने लगती है।

२०१. पूरे संसार की समस्याओं का एक मूल कोई कारण है तो यह है कि इच्छा तुम करते हो और इच्छा की क्रिया दूसरों से करवाना चाहते हो। इसलिए दुःख और समस्याएं पैदा होती हैं। तुम ठीक से इस पर चिन्तन करना क्योंकि इच्छायें तुम्हारी और क्रिया तुम सोचते हो दूसरा करे। तुम्हें इच्छा हुई कि यह हो और करे फलां व्यक्ति। मन तुम्हारा, तन उसका, यह तो हिंसा है, अपराध है। यह नहीं हो सकता। सब व्यक्तियों के जीवन में संघर्ष का मूल बीज यहीं से अंकुरित होता है।

२०२. आप कथा कब तक करते रहेंगे ?

बापू– रामकथा मेरा श्वास है, मेरा प्राणतत्व है और परमात्मा जब

तक मुझे निमित्त बनाकर जीवन में कथा करायेंगे, तब तक मैं रामगुण गाता रहूंगा और गाने के लिए कहता रहूंगा।

२०३. विषय-वासनाएं मनुष्य के विवेक को नष्ट कर देती हैं, इसलिए विवेक की रक्षा के लिए स्मरण एवं सत्संग आवश्यक है।

२०४. सतयुग में ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञ, द्वापर में पूजा, और कलियुग में मुकुन्द माधव नाम का स्मरण ही श्रेष्ठ है। जिस ऋतु में जो फसल बोई जाती हो, उसी फसल को बोना हितकर है।

२०५. किसी का भी पाप न देखो और न सुनो अन्यथा वह पाप तुम्हें भी भ्रष्ट बनायेगा।

२०६. भजन करो, भोजन कराओ, सत्संग करो, कुसंग टालो। जहाँ मन, वहाँ हम। अन्न का कण, सन्तों का क्षण व्यर्थ न करो।

□□□

नाथ मै थारो जी थारो।

चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी जो कुछ हूँ सो थारो।।
बिगड्यो हूं तो थारो बिगड़यो, थे ही मनै सुधारो।
सुधर्यो तो प्रभु सुधर्यों थारो, थां सू कदे न न्यारो।।
बुरो, बुरो मैं बहुत बुरो हूँ, आखर टाबर थारो।
बुरो कहा कर मैं रह जास्यूं, नांव बिगड़सी थारो।।
थारो हूँ थारो ही बाजूं, रहस्यूं थारो, थारो।
आंगलिया नुंह परे न होवे, या तो आप विचारो।।
मेरी बाज जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हारो।
मेरे बड़ो सोच यो लाबी, बिरद लाजसी थारो।।
जचे जिस तरों करो नाथ अब, मारो चाहे त्यारो।
जांघ उघाड़यां लाज मरोगा, उंडी बात बिचारो।।

– भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

(२५)

पूज्य श्री आशाराम बापू की वाणी

१. हरिकथा ही कथा है, बाकी सब व्यथा है।

२. डाइनेमो से जैसे बिजली पैदा होती है उसी प्रकार मंत्रों से ऊर्जा पैदा होती है। ऐसे आसन पर बैठकर ध्यान लगाओ ताकि अर्थिंग न मिले, नहीं तो ऊर्जा प्रवाहित हो जायगी।

३. जीवात्मा का परमात्मा के साथ शाश्वत सनातन सम्बन्ध है।

४. शान्ति की स्थिति में सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होता है।

५. सुख दुखमें सम होते जायँगे, प्रभु-प्रसाद की प्राप्ति होती जायेगी।

६. प्रयत्न कर, फिक्र मत कर।

७. चिन्तन करना ठीक है, चिन्ता नहीं।

८. क्रोध, चिन्ता, द्वेष को अपने चित्त में मत रख।

९. शराब बोतल का नुकसान नहीं करती, जो सेवन करते हैं, उनका नुकसान करती है।

१०. अपने स्वास्थ्य के लिए द्वेष को उखाड़ फेंको।

११. सुख-दुख में समान रहने वाला परम योगी है।

१२. हम राजी उसी में, जिसमें तेरी रजा है।

१३. बत्ती जाती है तो हम कहते हैं बत्ती गयी, सूर्य जाता है तो कोई शिकायत नहीं करता।

१४. पूरे मर्द वे हैं, जो हर हाल में ख़ुश हैं।

१५. आप अपने मन के स्वामी बनो।

१६. भोगी सतत सन्तुष्ट नहीं।

१७. सुख के लालच से या दुख के भय से चित्त अशुद्ध होता है।

१८. शक्ति का कर्ता और हर्ता वही परमेश्वर है।

१९. पानी में नाव रहे तो ठीक है लेकिन नाव में पानी ठीक नहीं।

२०. पेट न भरे तो पत्तल न छोड़े, किनारा न पड़े तो नाव न छोड़े, आत्म सन्तोष न हो तो जप साधन न छोड़े।

२१. पत्नी सब समय पत्नी है, चाहे लड़े या भजन करे।
२२. पाप का फल नरक, पुण्य का फल स्वर्ग।
२३. पाप की भावना अज्ञान से, अज्ञान अहंकार से और अहंकार दूर होगा नाम जप से।
२४. प्रभु की प्रेम दृष्टि से बदल जाती हैं तकदीरें,
अगर भाव अच्छा हो तो कट जाती हैं जंजीरें।
२५. अपनी अकल जब तक आती नहीं, तब तक समझ आती नहीं।
२६. वासना की दुर्गन्ध मिटे, उपासना की सुगन्ध मिले।
२७. परमात्मा तक गुलाब चमेली की सुबास नहीं पहुंचती, केवल सदाचार की सुबास पहुँचती है।
२८. गृहस्थ जीवन में विषमता होते हुए भी समता नहीं घटे।
२९. अन्य क्षेत्रों में किये हुए पाप तो तीर्थ क्षेत्र में समाप्त हो जाते हैं लेकिन तीर्थ में किये हुए पाप वज्र की तरह लग जाते हैं।
३०. मनुष्य का मन ही स्वर्ग नरक ले जाता है।
३१. किसी भी हालत में चित्त की प्रसन्नता को दांव पर मत लगाना।
३२. ज्ञान, वैराग्य, मूर्छित रहेंगे तो भक्ति रोती रहेगी।
३३. भगवत्‌कथा सुनने से ज्ञान, वैराग्य पुष्ट होता है।
३४. सुबह का बचपन देखा, दोपहर की मस्त जवानी
शाम का बुढ़ापा देखा, रात में खत्म कहानी।
३५. चित्त में समता एवं प्रभु से ममता रखो।
३६. समय की धारा में सुख दुख बहता है, जैसे गंगा की धारा में धूल एवं फूल बहते हैं।
३७. व्यास जी ने कहा कि काम से बचना है तो बिना चमड़ी के शरीर की कल्पना करो।
३८. ईश्वरीय कायदा सारे विश्व में एक है।
३९. सुख लेने या मांगने की चीज नहीं, सुख देना प्रारम्भ करो।
४०. जो आप दोगे वही आपके पास होगा।

४१. तूफान में वे ही वृक्ष धराशायी होते हैं, जिनकी जड़ें कमजोर हैं।
४२. मरने से डरने वाला कभी मरने से बचा है क्या ?
४३. सुकरात ने हंसकर जहर पिया और कहा – जी के भी देख लिया अब मर के भी देख लेंगे।
४४. दूसरे को दुखी कर आज तक कोई सुखी नहीं हो पाया।
४५. ऐसा कोई जीवन नहीं, जिसके साथ मृत्यु न हो।
४६. ऐसा संयोग नहीं, जिसके साथ वियोग न हो।
४७. प्रभु कहते हैं जो मेरा होकर मेरा चिंतन करता है, उसकी चिन्ता मैं करता हूँ।
४८. शराब अगर शराबी बनाता है तो ईश्वर हमें बंधन में कैसे डालता है; वह तो हमें मुक्त करेगा।
४९. योगी के जीवन में चमत्कार तो योग-सामर्थ्य से होता है।
५०. एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न हो।
५१. अनुकूलता में प्रसन्नता और प्रतिकूलता में दुखी होना साधारण मनुष्य का स्वभाव है, महामानव का नहीं।
५२. जन्म का अन्त मृत्यु है, ऊँचा उठने का अन्त गिरने में है, विकास का अन्त विनाश में है।
५३. आयु, आरोग्य एवं पुष्टि प्राप्त होती है भगवान के नाम से।
५४. मुख से ही केवल भोजन नहीं होता अन्य इन्द्रियों से भी भोजन होता है। इन्द्रियों का आहार शुद्ध होने से इन्द्रियों की चपलता कम होती है।

❑❑❑

कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं सम्पद्यते चरन्।।
चरैवेति चरैवेति।।

नींद में सोते पड़े रहना कलियुग तथा अर्द्धचेतना में जमुहाई लेना द्वापर है। नींद से उठकर खडा हो जाना त्रेता तथा पूरी चेतना में चल पड़ना सतयुग है। अतः चलते रहो----चलते रहो।
– ऐतरेय ब्राह्मण

(२६)
पूज्य श्री श्रीकान्त जी शर्मा "बालव्यास"
की कथा के कुछ संकलित अंश

१. जिसका हृदय बच्चों की तरह साफ होता है, उसे प्रभु गोद में उठा लेते हैं, ध्रुव और प्रह्लाद की तरह।

२. पत्थर भी सज्जन पुरुषों द्वारा स्थापित करने पर देवता बन जाता है।

३. जो सभी जीवधारियों में प्रभु का वास समझ कर उनमें भेद-भाव नहीं जानता, प्रभु उससे प्रसन्न रहते हैं।

४. भक्त सुख एवं दुःख दोनों को भगवान का ही प्रसाद समझ कर ग्रहण करते हैं।

५. जिसका कोई सहारा नहीं है, प्रभु ही उसका एकमात्र सहारा है।

६. किसी को अगर दूसरों से प्रेम चाहिए, सम्मान चाहिए तो दूसरों को भी सम्मान एवं प्रेम देना पड़ेगा।

७. भक्त, सन्त, गुरु एवं सज्जन पुरुषों के लिए गाली और प्रशंसा बराबर है।

८. सूर्य के प्रकाश से तारे छिप जाते हैं। उसी प्रकार प्रभु की भक्ति एवं दृढ़ विश्वास से सभी प्रकार की बुराइयां दूर हो जाती हैं।

९. केवल भक्त ही भगवान के लिए व्याकुल रहता हो ऐसी बात नहीं, भगवान को भक्त के लिए अधिक व्याकुलता रहती है।

१०. चारों ओर घनघोर अंधेरा हो, लेकिन प्रभु विश्वास रूपी टार्च साथ में हो तो कहीं रुकावट नहीं।

११. प्राणी कहता है-दया कर। प्रभु कहता है-याद कर।

१२. प्रभु तेरे हृदय में पहले है, उसके बाद अन्यत्र कहीं। भक्तों का हृदय ही प्रभु का स्थान है।

१३. जो शब्द मुंह से निकलता है उन्हें तो जग सुनता है और भीतरी भावना को भीतर वाला सुनता है।

१४. वही कार्य सबसे अच्छा है जिससे बहुसंख्यक लोगों को अधिक से अधिक

आनन्द मिल सके।

१५. वह गृहस्थाश्रम धन्य है जिसमें आनन्दमय घर, विद्वान पुत्र, सुन्दरी स्त्री, सच्चे मित्र, सात्विक धन, स्वपत्नी में प्रीति, सेवापरायण सेवक, अतिथि-सत्कार, नित्य देवपूजा, मधुर भोजन, सत्संगति और उपासना सर्वदा प्राप्त होते रहते हैं।

१६. कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं का दमन करने एवं दुःखों को सहन करने से चरित्र उच्च, सुदृढ़ और निर्मल होता है।

१७. कथा तुम्हारा रंग नहीं बदल देगी, जीवन जीने का ढंग बदल देगी।

१८. आनन्द हरि के नाम में है। आनन्द जब आयेगा, अन्दर से आयेगा।

१९. देह दुर्लभ दिया है प्रभु ने हमें। फिर भी छूटती नहीं दुर्वासना।

२०. प्रति दिवस आते हैं दर पर तेरे प्रभु, फिर भी तुमने तो मुझको निहारा नहीं।

२१. उनकी करुणा में कोई कमी है नहीं। योग्यता में हमारे कमी रह गयी।
उनकी कृपा में कोई कमी है नहीं। पात्रता में हमारे कमी रह गयी।
उनके आने में कोई कमी है नहीं। साधना में हमारे कमी रह गयी।
उनकी ममता में कोई कमी है नहीं। समता में हमारे कभी रह गयी।
उनकी महिमा में कोई कमी है नहीं। पवित्रता में हमारे कमी रह गयी।

२२. एक महात्मा ने कहा कि अगर हमारे कर्म देख कर प्रभु देवें तो एक बूँद पानी भी न मिले।

२३. दशरथ ने पुत्र जन्म करके आनन्द लूटा, हम कथा सुनकर आनन्द लूटेंगे।

२४. असर उसका वहां तक है, नजर जिसकी जहाँ तक है।

२५. ज्ञान परिचय कराता है, मिलाप भक्ति कराती है।

२६. सम्पत्ति कोई भी दे देगा। अच्छा संस्कार तो गुरु और सत्संग से ही लेना होगा।

२७. जिन माता-पिता की सेवा न करी तिन तीरथ स्नान कियो न कियो।

२८. जिस दिन सन्त दरवाजे पर आ जाएं, मानो आनन्द आ गया।
२९. अहंकार मत कर कि मैं दान देने वाला ट्रस्ट चलाता हूँ।
३०. हमें चिन्ता नहीं अपनी, उन्हें चिन्ता हमारी है।
३१. नेत्रों को अशुद्ध रखोगे तो काम प्रवेश करेगा और नेत्रों को शुद्ध रखोगे तो राम प्रवेश करेगा।
३२. गोपियों ने कहा – हाय ऊधो, हमें बता दो योग से क्या वियोग कम है ?
३३. योगी पहने रंगीन कपड़ा, वियोगी का सारा संसार रंगा है।
३४. ज्ञान को जानने के लिए जिज्ञासा चाहिए और भगवान को पहचानने के लिए भक्ति।
३५. सबसे ज्यादा प्राण प्यारा होता है।
३६. काम जब भक्ति के साथ उगता है तो राम से मिलन कराता है।
३७. तीन कारणों से आदमी झुकता है-लोभ, काम और भय।
३८. जीव और ब्रह्म की ग्रन्थि खुल जाए तो आनन्द आ जाए।
३९. हवाएं तो पार ले जाने को बेचैन हैं, जरा पाल तो खोल प्यारे।
४०. चाहे कोई बल हो जैसे विद्या, वैराग्य आदि का, सबसे बड़ा प्रेम बल है।
४१. जब भगवान प्रेम है, तो अभिमान का क्यों स्वागत हो।
४२. प्रेम के गणित में एक और एक मिलकर एक होता है।
४३. शिव के गले में जहर रहता है, लेकिन मुख में राम रहते हैं।
४४. अगर परमात्मा का दर्शन करना हो, तो मन की चंचलता न हो।
४५. किसी से न डरो, केवल कुसंग से डरो।
४६. दुनिया को तुम्हारा तन, धन चाहिए। भगवान को केवल तुम्हारा मन चाहिए।
४७. जब बालक छोटा होता है तो माँ अपने पास रखती है लेकिन बड़ा होने पर नहीं साथ रखती। छोटा था तो निर्विकार था, बड़ा होने पर

विकारी हो गया। माँगो मत। लेकिन जो प्रभु ने दिया है उसकी खुलकर बड़ाई करो। जो दिया है, वही काफी है।

४८. थोड़ा दिया है, माने, जीव है। अधिक दिया माने तो फ़कीर है।

४६. सारे अनर्थों की शुरुआत किसी अपवित्र विचार से होती है।

५०. साधु तो केवल बीज डालता है। खाद, पानी, सुरक्षा तो तुम्हें करनी है।

५१. किसी साधु से हमारे तार जुड़ जाएँ तो हम अच्छे हो जाएं।

५२. कान समुद्र है, कथा नदियाँ हैं। नदियाँ समुद्र में समाप्त होती हैं।

५३. घर अपना सलामत है तो मेहमान बहुत हैं।

५४. जो दूसरे के सुख में चोंच मारे, वही कौआ है।

५५. तीरथ, व्रत और दान का मन में गुमान न करो।

५६. जीवात्मा रोता है अभाव में, भक्त रोता है भाव में, भगवान रोता है स्वभाव में।

५७. कथा आलसी नहीं बनाती, उद्यमी बनाती है।

५८. वीरता एवं धीरता हो तो आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता।

५६. बच्चे को सम्पत्तिवान बनाने के बजाय संस्कारवान बनायें।

६०. धर्म से विमुख होने के कारण ही राष्ट्र की दुर्दशा हो रही है।

६१. चांदी के चंद टुकड़े के लिये जो चेहरा कुम्हला जाय, वह भगवान को क्या याद करेगा।

६२. संसार में जब कोई साथ न दे, तो भगवान ही साथ देता है।

६३. तप, अनुष्ठान, यज्ञ का दिखावा करने से उसका फल नष्ट हो जाता है।

६४. माया में पड़े हुए मानव को अपना दोष नहीं दिखता।

६६. अन्त समय क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। शरीर ठीक हो तभी सत्कर्म करो।

६७. मनुष्य जैसा कोई टेढ़ा नहीं, भगवान जैसा सरल नहीं।

६८. ज्ञान का अंहकार अज्ञान से बुरा है।

को समाधि का, ब्रह्मचारी को शुद्धता का अभिमान है। सच्चा भक्त ही प्रभुकृपा से इससे बचता है।

६६. अहंकार, ममता का नाश नहीं होगा तब तक आत्मा में प्रकाश नहीं होगा।

७१. परमात्मा के लिए दुःख सहना तप है।

७२. आज जो अच्छा लग रहा है, कल वह खराब लगेगा। मन स्थिर कहाँ है ?

७३. जिस तरह सलाई की एक तीली से कुछ ही क्षणों में रुई का ढेर राख हो जाता है, सत्संग के कुछ क्षण अज्ञान को विदग्ध कर देते हैं।

७४. जिसका हृदय बच्चों की तरह साफ होता है, उसे प्रभु गोद में उठा लेते हैं, ध्रुव और प्रह्लाद की तरह।

७५. राम कथा मनोरंजन के लिए नहीं है। मनोमंथन के लिए है।

७६. हंस पर बैठने वाली सरस्वती जब परमहंस की वाणी पर बैठ कर बोलती है तो वह प्रसन्न होती है।

७७. भगवान को चाहने वालों को अपने पास रखो ताकि तुम्हारे में भी चाहना उत्पन्न हो।

७८. पूजन सबका करें लेकिन अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा बढ़े, ऐसा आशीर्वाद मांगें।

७६. मन को ममता में सुख प्रतीत होता है। लेकिन सच्चा सुख समता में है।

८०. जहां सूरज का सम्मान होता है, वहां दीपक का भी पूजन होता है। अमीर की तरह गरीब का भी सम्मान करें।

८१. लकड़ी की रगड़ अग्नि पैदा करती है। सन्तों की वाणी से जीवन में उजाला पैदा होता है।

८२. सद् शिष्य दुर्लभ है, सद् गुरु सुलभ है।

८३. शिष्य तो ऐसा चाहिए जो गुरु को सब कुछ दे और गुरु ऐसा चाहिए जो कौड़ी भी न ले।

जो कौड़ी भी न ले।

८४. जैसे अगरबत्ती स्वयं जलकर सुगन्ध देती है वैसे ही महात्मा भी स्वयं कष्ट पाकर दूसरों को आनन्द देता है।

८५. कुछ लोग दूसरों के छिद्र खोलते हैं। साधु दूसरों के छिद्र ढँकते हैं।

८६. गंगा पाप, चन्दन ताप एवं कल्पवृक्ष दरिद्रता का हरण करता है। लेकिन साधु पाप, ताप एवं दरिद्रता तीनों का हरण करता है।

८७. जो भगवान से डरता है वह किसी से नहीं डरता। जो भगवान से नहीं डरता वह सबसे डरता है।

८८. जैसा पीयोगे पानी वैसी होगी वाणी।
जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन।
जैसी रखोगे शुद्धि, वैसी वनेगी बुद्धि।
जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।
जैसा विचार, वैसा संसार।

८९. रामकथा केवल धरती पर है, वैकुण्ठ में भी नहीं, अतः धरती श्रेष्ठ है।

९०. हम भगवान को देखते हैं, यह साधारण बात है। भगवान जिसको देख ले तो समझो पूर्ण घटना घटित हो गयी।

९१. तन मन धन अच्छे के पास जाते हैं तो अच्छे हो जाते हैं, बुरे के पास जाकर बुरे हो जाते हैं।

९२. तीन विगाड़े देश को कपटी, कायर, क्रूर
तीन सुधारे देश को सती, सन्त और शूर (विद्वान)।

९३. रूप का जो प्यासा है, वह स्वरूप को क्या पाएगा।

९४. जव तक रूप पीता है, भटकता है। जिस दिन स्वरूप पीएगा, भटकन वन्द हो जायेगी।

९५. अच्छा साधक वह है, जब काम आवेग आने वाला हो, सावधान होकर हट जाए।

९६. जो विपत्ति में भी भजन का त्याग नहीं करता, वह भगवान को दास

९७. मर्म न जाने तो कर्म व्यर्थ है। दान न जाने तो अर्थ व्यर्थ है। भाव न जाने तो भक्ति व्यर्थ है। ज्ञान न जाने तो धर्म व्यर्थ है।

९८. काम तब मरता है जब राम पर भरोसा किया जाता है।
क्रोध तब मरता है जब राम का दर्शन किया जाता है।
लोभ तब मरता है जब कृष्ण के दर्शन का लोभ किया जाता है।

९९. बच्चे जीते हैं वर्तमान में, जवान जीते हैं भविष्य में, बूढ़े जीते हैं भूतकाल में।

१००. दुःख के कारण घर छोड़ोगे तो जहां जाओगे, दुःख मिलेगा। आनन्द में संन्यास लोगे तो जहां जाओगे, आनन्द मिलेगा।

१०१. किसी अन्धे को प्रज्ञा चक्षु कहें, सूरदास कहें और अन्धा कहें। तीनों सम्बोधन का अर्थ अलग-अलग है।

१०२. पुष्प सबको समान रूप से खुशबू देते हैं, पेड़ सबको समान रूप से फल देता है, सूर्य सबको समान रूप से प्रकाश देता है। इन्सान दान देने में भेदभाव क्यों करे।

१०३. गुड़ मत खिला लेकिन गुड़ की सी मीठी बात तो कर।

१०४. सागर में छलांग से रत्न न मिले तो क्या सागर रत्न से हीन है ?

१०५. बादलों से पानी की वृष्टि होती है। गुरु कृपा से गोविन्द को देखने की दृष्टि प्राप्त होती है।

१०६. गंगा भुवन को पवित्र करती है। सन्त त्रिभुवन को पवित्र करते हैं।

१०७. दुनिया में सभी प्रणाम करने लायक लगें, उसी दिन तुम्हारा सन्तत्व सिद्ध हुआ।

१०८. दो, तीन महीने की चाय, पान सुरती आदि खाने की आदत नहीं छूटती तो जनम जनम की बुरी आदतें कैसे छूटें ?

१०९. भंवरा सभी फूलों का रस जानता है। घुन केवल सूखी लकड़ी का रस जानता है।

११०. चन्द्रकान्त मणि चांद देखकर पिघलती है, सूर्यकान्त सूर्य देखकर

पिघलती है। हिमालय की बरफ सूर्य की किरणों से पिघलती है। संत दूसरे का क्लेश देखकर पिघलता है।

१११. जाओ सन्त के पास तो हंस की तरह मोती चुग के लाओ। कौवे की तरह गन्दा या विष्ठा लेकर मत आओ।

११२. मुझे खुशी नहीं कि मैं अमीर हूँ। मुझे दुःख नहीं है कि मैं गरीब हूँ। मुझे खुशी है कि मैं भगवान के करीब हूँ।

११३. अमृत एवं विष लक्ष्मी के सहोदर हैं। इसीलिए लक्ष्मी अमृत का भी काम करती है और विष का भी।

११४. जेल में जेलर है और कैदी है। एक निकलना चाहता है, दूसरा रुकना चाहता है। इसी प्रकार इस दुनिया में कोई रहना चाहता है, कोई निकलना चाहता है।

११५. चांद को नहीं पा सकते लेकिन चन्द्र किरण सबको मिल सकती है। राम सबको नहीं मिल सकते लेकिन रामकथा सबको मिल सकती है।

११६. अगस्त मुनि ने तीन चुल्लू में सागर पी लिया। तीन चुल्लू हैं - श्रवण, मनन, आचरण।

११७. भगवान की प्रतीक्षा करो, परीक्षा मत लो।

११८. श्रम के महत्व को हमारे ऋषियों ने स्थापित किया। अतः ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम एवं संन्यास आश्रम में श्रम करने की व्यवस्था दी।

११९. हिलता हुआ तालाब कह रहा था-चांद कलंकित है। पहाड़ हिल रहा है, तो आकाश गंदला है। जब तालाब का पानी स्थिर हुआ तो चांद सुन्दर हो गया, पहाड़ स्थिर हो गया तो आकाश निर्मल हो गया।

१२०. कोई पति नहीं जो चौबीस घंटे पत्नी को साथ रख सके। कोई पत्नी नहीं जो चौबीसो घंटे पति को साथ रख सके। कोई मां नहीं जो चौबीसों घंटे बेटे को साथ रख सके। केवल भगवान ही हमें चौबीसों घंटे साथ रखते हैं।

१२१. नारद ने बताया कि काम आदमी को बन्दर बना देता है। कामी आदमी को न भय है और न लज्जा। नारद ने स्वंय अपमान लेकर मानव मात्र को सीख दी।

१२२. लक्ष्मी को भगवान विष्णु ने अपने पग दे रखे हैं। दिल तो अपने भक्तों को दे रखा है।

१२३. सागर में रत्न तो सीमित मात्रा में मिलेगा, शास्त्रों से नित्य अनमोल रत्न प्राप्त करो।

१२४. बुद्ध ने शिष्यों को स्त्री-स्पर्श से मना किया था। एक स्त्री गंगा में डूब रही थी। एक शिष्य ने बाहर निकाला। दूसरे शिष्य ने भगवान बुद्ध से शिकायत किया कि उस शिष्य ने स्त्री का स्पर्श कर लिया। भगवान बुद्ध ने कहा कि उसने तो गंगा से निकाल कर किनारे स्त्री को रख दिया और भूल गया। तुम पांच कोस तक स्त्री को ढोकर क्यों ले आये?

१२५. "जमाने ने हमारा साथ नहीं दिया, नहीं तो हम भी कुछ होते।" यह तो कायरों के शब्द हैं। नर मनुष्य तो अपने हिसाब से जमाने को कर लेता है।

१२६. आदर्श पुरुष कौन ? उपकार करने से जिसे सुख मिले तथा दूसरों का उपकार ग्रहण करने में लज्जा आवे।

१२७. जहाँ महात्मा रहें, रात नहीं। जहाँ मूर्ख रहें, वहाँ सुप्रभात नहीं।

१२८. भजन कपूर की तरह है। छिपाकर रखो तो रहेगा, नहीं तो उड़ जायगा।

१२९. स्वर्ग में महात्मा का कमरा खाली है, कारण महात्मा बोलता है कि हम तब तक स्वर्ग नहीं जायेंगे जब तक यह पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन जाती।

१३०. बोलना तो एक वर्ष में आ जायेगा। मौन सीखने में वर्षों लगेगा।

१३१. प्रत्येक मनुष्य में अलौकिक शक्तियों का भण्डार है। आवश्यकता है छिपी हुई शक्तियों को जागृत करने की।

१३२. सबसे बड़ी शक्ति है संकल्प शक्ति कि "मैं करूंगा।"

१३३. संसार तब सम्मान करेगा जब तुम पूर्ण रहोगे। ईश्वर तब सम्मान करेगा जब तुम उसके सामने अपूर्ण रहोगे।

१३४.अंधेरा को दूर करने का प्रयास मत करो- प्रकाश करो अंधेरा अपने आप चला जायेगा।

१३५.उद्धव योगी है, गोपियां वियोगी हैं। उद्धव को आँख बन्द करके देखना पड़ता है। वियोगी जिधर देखता है घनश्याम दिखाई पड़ता है।

१३६.आदमी जहाँ जाता है अपना प्रभाव दिखाता है। सन्त जहाँ जाता है अपना स्वभाव दिखाता है।

१३७.अपने पर शासन न हो, तो दूसरों पर अनुशासन नहीं हो सकता।

१३८.राम ने रूप से मिथिला को जीता, बल से लंका को जीता और शील से परशुरामजी को जीता। जिस व्यक्ति के जीवन में रूप, बल व शील आ जायँ तो समझो उस पर भगवान की बड़ी कृपा है।

१३९.मर्यादा में रहने वाले कष्ट बहुत पाते, लेकिन वे ही अमर होते हैं।

१४०.तन की हवस मन को गुनहगार बना देती है।

१४१.किसी ने कहा हमें भगवान दिखाओ तो उसने कहा - हमें अपना दर्द दिखाओ तो हम भगवान दिखाएँ। आप अपना सपना दिखाओ तो हम अपना भगवान दिखावें।

१४२.जो बिना होते हुए दिखाई दे, वह माया है।
माया से बचने के लिए जाओ मायापति के शरण में।

१४३.एक का आश्रय लेने वालों को निश्चिन्तता रहती है। अनेक का आश्रय लेने वाला अशान्त रहता है।

१४४.उजाले हमने देखे हैं तो अंधेरा कौन देखेगा।
सुख हमने भोगा है तो दुःख कौन भोगेगा।

१४५.वैराग्य के मार्ग में आशा ही परम दुःख है। प्रेम के मार्ग में आशा ही परम सुख है।

१४६.बीसवीं चोट पर पत्थर टूटा तो उन्नीस चोट बेकार नहीं। उन्नीस चोटों ने उसे जर्जर किया।

१४७.ज्वर तो नस को कमजोर करता है, कुसंग बुद्धि को ही दूषित कर

देता है।

१४८.समुद्र मन्थन से चौदह रत्न निकले। मनोमन्थन से अनगिनत रत्न नित्य निकलते हैं। किसी सन्त की कृपा की आवश्यकता है।

१४६.सूकरी को कहा कि चलो स्वर्ग तो उसने कहा कि वहां गन्दगी व विष्ठा नहीं है। मैं जाकर क्या करूंगी। हमारे लिए तो यही स्वर्ग है।

१५०.भाई जी हनुमान प्रसाद जी पोद्दार ने कहा-निज करनी से जी घबड़ावे है, प्रभु कृपा से धीरज आवे है। जिसके पास "नाम" है उसी के पास नाव है।

१५१.पाप करता है, उसका फल नहीं चाहता। पुण्य नहीं करता लेकिन फल चाहता है। कितना मतिविभ्रम है ?

१५२.बेटे (जीव) ने मां का हाथ पकड़ा तो हाथ छूट सकता है। अगर माँ पकड़े तो छूटने की सम्भावना नहीं है।

१५३.जो सबका वन्दन करता है, उसी का जमाना अभिनन्दन करता है।

१५४.आलसियों के लिए जो वस्तु दूर है, उद्यमियों के लिए वही नजदीक है।

१५५.मूर्च्छा के बाद संजीवनी के कारण लक्ष्मण जी उठे तो विद्वानों ने बताया चौदह वर्ष जागने वाला लक्ष्मण आज उठा है। कुम्भकर्ण भी आज उठा है। राम अभिमान कर रहे हैं जागने वाले पर। रावण अभिमान कर रहा है सोने वाले पर।

१५६.भक्ति, भक्त, भगवान, गुरु चारों एक है। खटिया का एक पाया खीचों तो सारी खाट आ जायेगी।

□□□

(२७)

पूज्य रमेश भाई ओझा के प्रवचन के कुछ सूत्र

१. प्रिय से अप्रिय वचन सुनना बड़ा कष्टकारक होता है।
२. अनेक में भटकते काम को एक में केन्द्रित करना ही लग्न व्यवस्था है।
३. मूल्यवान पैसा नहीं, जीवन है। जीवन का आदर करो।
४. अति भलो न बोलना, अति भलो न चूप।
अति भलो न बरसना, अति भलो न धूप।
५. संसार को वही प्रकाश दे पाये हैं जो जले हैं, तपे हैं।
६. हमारी वासना व अज्ञान ही हमारे बन्धन का कारण है।
७. कर्म व क्रिया में भेद है। क्रिया प्राकृतिक है जैसे गंगा का बहना। क्रिया में अहम् आया तो कर्म हो जाएगा।
८. पाप से बचने के लिए पुण्य में लिप्त रहो।
९. पाप की सजा भुगतनी ही पड़ेगी। पुण्य कर्म परमात्मा को समर्पित कर दिया जाए।
१०. विषय ही विष है।
११. इन्द्रियों का निग्रह करो, दमन नहीं, नाश नहीं।
१२. मनुष्य प्रकृति का ध्वंसक न बने, पूजक बने।
१३. इस्लाम धर्म कहता है सब कुछ ईश्वर का है। हिन्दू धर्म कहता है सब कुछ ईश्वर ही है।
१४. सद्गुरु का क्रोध भी अनुग्रह है।
१५. सबमें परमात्मा, सब परमात्मा में।
१६. दर्शन का माने प्रभु जी को नयनों से पीना है।
१७. हमारी निद्रा समाधि हो जाय, चलना प्रदक्षिणा हो जाए, वचन स्तुति हो जाए और हमारा मकान मन्दिर हो जाए।
१८. लहसुन प्याज न खाएँ, किन्तु रिश्वत खाएँ, किन्तु यह धर्म नहीं है।
१९. कर्म के बन्धन से मुक्त होने के लिए भी कर्म करना पड़ेगा।
२०. देह भाव से ऊपर उठने के लिए देह का माध्यम जरूरी है।
२१. जिसमें रस आता है, इन्द्रियां वहां जाती हैं।
२२. जानकारी को ज्ञान न समझना।
२३. जानकारी हौज है, ज्ञान कुंआ है।
२४. जिनका सान्निध्य भजन में प्रवृत्त करे, वही सन्त है।

(२८)

आचार्य श्री किशोर व्यास के उपदेश

१. कथा में बैठने का महत्व नहीं, कथा हमारे में बैठ जाय।
२. सभी चीज सेट हो, मन अपसेट हो, तो सभी बेकार है।
३. कार हो या काया, 'ब्रेक' अर्थात् संयम आवश्यक है।
४. कथा भाव जगाती है, भय भगाती है।
५. हम ठाकुर को केन्द्र में रखकर परिक्रमा करते हैं। इसी प्रकार जीवन के केन्द्र में ठाकुर जी रहें तो सभी क्रियाएं ठीक होंगी।
६. जीवन की गाड़ी में गति के साथ-साथ संयम भी चाहिए, वरना दुर्घटना हो जायगी।
७. तुम्हें कृष्ण चाहिए, इसमें मतभेद हो सकते हैं लेकिन आनन्द सभी को चाहिए।
८. मरना निश्चित है, कभी भी मर सकता है। लेकिन कोई मरना नहीं चाहता है। मरने के भय को समाप्त करना पुरुषार्थ है।
९. सत्संग से बुद्धि शुद्ध होती है।
१०. भागवत का सेवन करना है, केवल श्रवण नहीं।
११. पुत्र, वित्त, कीर्ति की कामना जब समाप्त हो जाय तो संन्यासी होना उचित है।
१२. हर कथा को जीवन की अन्तिम कथा समझ कर पूरे मनोयोग से सुनो, तो ही उसका लाभ मिलता है।
१३. प्रत्येक मनुष्य को मनन करना चाहिए कि कथा का सार अपने जीवन में कैसे उतारे।
१४. गलत बात को गलत स्वीकार करना ही सुधार का प्रारम्भ है।
१५. मनुष्य का अन्तरंग पश्चात्ताप से बदलता है।
१६. पूर्व में जीवन की गलती को जानने के उपरान्त भविष्य में कोई गलती न हो, इसका पूरा प्रयास करें।
१७. नियमों में शिथिलता होती है केवल बालक, बीमार एवं वृद्ध के लिए।
१८. इन्द्रियों को जो प्रिय लगे वह प्रेयस। श्रेयस् माने वह जिसमें मानव का हित निहित है।

१९. सर्वोच्च सफलता भगवत् भक्ति में निहित है। अन्य किसी मार्ग से तृप्ति नहीं होती।
२०. भगवान की भक्ति ही समस्त शास्त्रों का सार है।
२१. भगवान के अवतार का हेतु है अपने भक्तों से मिलना एवं दुष्टों का नाश करना।
२२. भगवान के चरित्र से आनन्द मिलता है। भक्तों के चरित्र से प्रेरणा मिलती है।
२३. ऋषि परम्परा है वेद मन्त्र का दर्शन। आचार्य परम्परा है समाज में मन्त्रों की प्रस्थापना करना।
२४. श्रीमद्भागवत के श्रवण से मृत्यु का भय समाप्त होता है। कलुषित वृत्तियों का शमन होता है एवं उदात्त भाव से चित्त भर जाता है। भक्ति से हमारा पूरा अस्तित्व एकाकार होता है।
२५. श्रीमद्भागवत समाधि भाषा है। समाधि में इन्सान की जो अनुभूति होती है, उसमें संशोधन की गुंजाइश नहीं रहती।
२६. सागर को पार कर लेना और बात है। उसकी गहराई को जान लेना और बात है।
२७. शस्त्र का प्रयोग हाथ से, अस्त्र का प्रयोग मन्त्र से होता है।
२८. हमें प्यास लगती है, हम पानी पीते हैं। लेकिन पानी को प्यास लगे तो कैसे बुझे ?
२९. भीष्म ने मृत्यु को रोक कर रखा क्यों ? पितृ भक्ति एवं ब्रह्मचर्य के कारण।
३०. दुराचारी निरन्तर अशान्त रहेगा। असत्यभाषी भी अशान्त रहेगा, हिंसक भी अशान्त रहेगा।
३१. समृद्धि के साथ-साथ सदाचार होगा, तो ही स्थायी सुख मिलेगा।
३२. धर्म के चार आधार : तप याने कष्ट को सहना, शुद्धता, (अन्तःकरण भी शुद्ध हो), दया एवं सत्य।
३३. आलस्य से विद्या तथा दूसरे के हाथ गया धन नष्ट हो जाता है।
३४. जिस समाज में श्रम की कीमत समाप्त हो जायगी, वह टिक नहीं सकता।
३५. गन्दे पानी में कीड़े पैदा होंगे, गन्दी सम्पत्ति से गन्दगी पैदा होगी। सम्पत्ति

को अच्छे कार्यों में खर्च करते रहो।

३६. दूसरे की बुराई देखने से अपने में बुराई पैदा होती है।

३७. उत्तेजनाओं से बचो, तो ही शान्ति मिलती है।

३८. सन्तों के सामने अपनी गलती कहोगे तो गलती का शमन होगा। उसी प्रकार अच्छे कर्म का बखान करोगे तो अच्छाई के पुण्य में कमी आयेगी।

३६. विधाता की सर्वोत्तम कृति मनुष्य है।

४०. मानव जीवन एक अनमोल अवसर है।

४१. हमारी शक्ति एवं क्षमता का १० प्रतिशत भी उपयोग नहीं होता।

४२. अनमोल देह है। कुछ दिन तक मिला है। इसका अच्छा से अच्छा उपयोग कर लो।

४३. संसार का सबसे बड़ा लाभ, आत्मलाभ; याने अपने को जान लेना है।

४४. मनुष्य को समय का उपयोग करना चाहिए। समय के मूल्य को पहचानो। जिसने समय को नहीं पहचाना उसने जीवन व्यर्थ गंवाया।

४५. सद्गुरु का प्रथम कर्त्तव्य है कि शिष्य को निर्मल कर दे।

४६. सर्वोत्तम तप है चित्त की एकाग्रता।

४७. हमें अशान्त संसार को पार कर प्रशान्त संसार को प्राप्त करना है।

४८. हम वस्तुओं के लिए रोते हैं, वासुदेव के लिए कौन रोता है ?

४६. ज्ञान की भूख लगती है तो मनुष्य सन्तों के पास जाता है।

५०. जब तक जीवन शुद्ध नहीं तब तक प्रभु का मिलन नहीं।

५१. जो स्वयं की वाणी का आदर करता है, उसकी वाणी का आदर प्रकृति भी करती है।

५२. केवल जप तप से सिद्धि नहीं मिलती, सदाचार साथ में आवश्यक है।

५३. जिज्ञासु जब तक पूछेगा नहीं, ज्ञानी बोलेगा नहीं।

५४. कभी सुख है, कभी दुःख है। इसी का नाम जीवन है। कभी धनवान है कितना, कभी इन्सान निर्धन है। जो मुश्किल में न घबड़ाए उसे इन्सान कहते हैं। जो मुश्किल में काम आवे उसे इन्सान कहते हैं। यह दुनिया एक उलझन है। कहीं धोखा, कहीं ठोकर। कोई हंस-हंस कर जीता

है, कोई रो-रो कर जीता है। जो गिर कर फिर सम्भल जाय, उसे इन्सान कहते हैं। किसी के काम जो आए उसे महान कहते हैं। पराया दर्द अपनावे, उसे भगवान कहते हैं।

५५. जिस सुख की कामना है, वह अन्दर ही है।

५६. आत्मा के विषय को ही अध्यात्म कहते हैं।

५७. जीवन आनन्द का सागर है।

५८. निस्संग की पात्रता के लिए सत्संग करना पड़ता है।

५९. सहनशीलता - मेरा वश नहीं चले अतः सह लूँ, वह नहीं है। शान्ति से प्रसन्नतापूर्वक सहन करे।

६०. अध्यात्म का पुण्य एकान्त में मिलता है।

६१. रामकृष्ण परमहंस देव को माँ दीखती है, हमें पत्थर दीखता है।

६२. सम्पत्ति तो सुलभ है, प्रेम दुर्लभ है।

६३. वरसात का जल विभिन्न मार्गों से होता हुआ सागर में मिलता है। सभी रास्ते एक ही परमात्मा की तरफ ले जाते हैं।

६४. मन्दिर में अपने ठाकुर में पूरे संसार को देखो।
वाहर आकर संसार में अपने ठाकुर को देखो।

६५. जिसके सामने वड़ा लक्ष्य खड़ा हो जाता है, वह सो नहीं सकता। जैसे ध्रुव सो नहीं सका तो वह स्थान पाता है, जिसमें स्थायित्व हो।

६६. जगन्नाथ ने जिसका हाथ पकड़ लिया, वह अनाथ कैसा।

६७. पत्नी की परीक्षा गरीबी में, योद्धा की रणांगन में और मित्र की परीक्षा आपत् काल में होती है।

६८. विजय न हो, तब भी सिद्धान्तों से समझौता न करो। अच्युत बनो।

६९. अच्छे विचार आते हैं लेकिन टिकते नहीं। अतः तुरन्त कार्यान्वित कर लें।

७०. सत्कर्म में सहयोग करने वाली पत्नी ही धर्मपत्नी है।
महाप्रभु चैतन्य की पत्नी श्रुतप्रिया, भगवान रामकृष्ण परमहंस की पत्नी शारदा और महाराणा प्रताप की पत्नी ने अपने पतियों को सहयोग दिया।

७१. भोगों से भोगेच्छा बढ़ती जाती है। संसार के सभी भोग्य पदार्थ एक व्यक्ति को मिल जायँ, तब भी उसे तृप्ति नहीं मिलेगी।

७२. नाशवान पदार्थ से अनासक्त रहने पर ही शान्ति मिलती है। शान्ति के बाद आनन्द मिलेगा।

७३. संसार में संतोष करना, भगवान की प्राप्ति में सन्तोष न करना ही प्रगति का सूचक है।

७४. असुर कोई जाति नहीं होती। आसुरी वृत्ति वाला ही असुर होता है।

७५. जो दोष बाहर से आता है, उसे हम बाहर भी कर सकते हैं।

७६. आदमी शत्रु से सावधान रहता है, मित्र से भी सावधान रहे।

७७. जैसे बाहर की वस्तु 'मैं' नहीं हूँ, उसी प्रकार चित्त की वृत्ति भी 'मैं' नहीं ।

७८. पूतना एवं यशोदा को समान गति मिली - यह प्रभु का करम है। मेरे प्रभु केवल स्मरण चाहते हैं।

७९. कंस ने भय, शिशपाल ने विरोध, गोपियों ने प्रेम किया। सबको मुक्ति मिली, चन्दन को चाहे रगड़ा जाय, जलाया जाय, काटा जाय-सभी को सुगंध हीं देता है। किसी भी भाव से प्रभु का स्मरण करो तो उसी में भलाई है।

८०. भक्ति में चित्त की वृत्तियों को कृष्ण का रंग देना होता है।

८१. गोपियां कौन हैं ? परमहंस सन्त हैं। कृष्ण को पकड़ना चाहती हैं। माखनचोरी एक खेल है-गोपियों को आनन्द देने के लिए। आज मेरा विलोना सार्थक हुआ। मेरा जीवन धन्य है। आज मेरा माखन कृष्ण को अच्छा लगा। माखन चोरी आनन्द लीला है। माखन चोरी चित्तचोरी है।

८२. चित्त माखन जैसा निर्मल एवं कोमल बनाओ तो कृष्ण चित्त की चोरी कर लेगा। चोरी के समय का पता नहीं।

८३. जीव का समर्पण जिस क्षण होता है, उसी क्षण प्रभु का पदार्पण होता है। प्रभु को कोई बांध नहीं सकता। बन्धन केवल प्रेम का है।

८४. ज्ञानी को भगवान जैसे है, वैसे ही मिलता है, भक्त को जैसा वह चाहता

है, वैसे मिलता है।

८५. श्रीमद्भागवत के एक एक श्लोक पर संसार का सम्पूर्ण माधुर्य न्यौछावर कर दिया जाय, तब भी कम है।

८६. माता पिता प्रत्यक्ष देवता हैं। अन्य देवता की पूजा की जाय लेकिन माता-पिता की उपेक्षा करके नहीं।

८७. समाज की रक्षा कैसे होगी ? सर्वप्रथम गाय की पूजा करो।

८८. नूतन श्रद्धा का निर्माण करने की क्षमता न हो तो पुरातन श्रद्धा पर प्रहार करने का अधिकार नहीं।

८६. जीवन का विकास दुःख से भी, सुख से भी।

६०. केवल लाभ होवे तो आदमी का अहंकार बढ़ जाता है।

६१. प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसे अहंकार से बचाते हैं। अहंकार दूर करने के लिए कभी संकट में पड़ना भी आवश्यक है।

६२. कृष्ण से मिलने की प्यास का नाम राधा है।

६३. गोपियां व्याकुल हैं, व्यग्र हैं। यह व्याकुलता ही साधक का धन है।

६४. संसार में लाचार वह होता है, जिसको कुछ चाहिए। आत्मनिष्ठ सन्त को कुछ नहीं चाहिए।

६५. प्रेम एवं काम दोनों में आसक्ति है। प्रेम की आसक्ति प्रेमास्पद के सुख के लिए, काम में अपने सुख के लिये। प्रेम में स्वयं सुख का विचार है ही नहीं। मेरे जीवन का होम जलता रहे और मैं प्रसन्न रहूँ।

६६. जो समाज दुर्बल होगा, वह अन्याय का प्रतिकार नहीं कर सकता।

६७. योग्य साधनों का अभाव दुर्जनों को बल प्रदान करता है।

६८. समाज में काम करने वालों की चाहे कमी हो, लेकिन मुफ्त की सलाह देने वालों की कमी नहीं।

६६. विवाह और मैत्री आनन्द के लिए होती है।

१००. हमारी अपेक्षा की पूर्ति का अभाव ही दुःख है।

१०१. आध्यात्मिक व्यक्ति अगर हंसता नहीं, तो रोगी जैसा लगता है।

१०२. व्यक्ति के व्यवहार से सिद्धान्त भी बदनाम होता है।

१०३. भूतकाल गया। भविष्य अनिश्चित है। वर्तमान को पूर्णता से भर

दो।

१०४. आज की समस्या है कि कोई दूसरे की सुनना नहीं चाहता।

१०५. बुराई की आलोचना करते हो तो अच्छाई का अभिनन्दन करो।

१०६. श्रीमद्भागवत मरने के बाद स्वर्ग में जाने की कथा नहीं है। जीते जी स्वर्ग बनाने की कथा है।

१०७. हर समस्या का समाधान शब्दों में नहीं, कभी कभी मौन भी उचित है।

१०८. सम्बन्ध चाहे न रखो लेकिन किसी का अपमान न करो।

१०९. सबको प्रसन्न रखूंगा, इस नीति से काम नहीं होगा।

११०. धृतराष्ट्र में विवेक के नेत्र नहीं, अतः अन्धा।

१११. हम भगवान का चयन करते हैं या संसार की भौतिकता का, यह इस पर निर्भर करता है हम भीतर से दुर्योधन हैं या अर्जुन। पहले जांच लें।

११२. दारिद्र्य दोष के कारण समस्त गुणों पर पानी फिर जाता है।

११३. जीव के कल्याण के लिए प्रभु ने जो उपाय बताए, वही भागवत धर्म।

११४. केवल मूर्ति पूजा से पूजा समाप्त नहीं होनी चाहिए।

११५. जिसने जीभ को नहीं जीता, वह मन को भी नहीं जीत सकता।

११६. सुख शान्ति के लिए भूलना सीखो।

११७. साधक को अधिकाधिक एकान्त का सेवन करना चाहिए।

११८. ज्ञान को प्राप्त करके भी भक्ति का त्याग न करें।

❑❑❑

(२६)

सद्गुरु स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती की वाणी

१. स्वयं की अपेक्षा तथा अन्य की उपेक्षा ही दुखों का मूल कारण है।

२. सुख-दुःख की अनुभूति वस्तु-व्यक्ति-परिस्थिति से नहीं, बल्कि अपनी मानसिकता के आधार पर होती है।

३. अपने प्राप्त विवेक का आदर करो।

४. जो समय परोपकार व भगवत् स्मरण में बीता है, वही मनुष्य की वास्तविक उम्र है, वही सार्थक है।

५. भगवान् हमारे हैं, ऐसा बुद्धि द्वारा दृढ़ निश्चय होने पर मन वहाँ स्वतः ही लग जाता है।

६. जैसा सद्व्यवहार दूसरों से चाहते हो, वैसा ही स्वयं करो।

७. सांसारिक कार्य करते हुए भी मन को भगवान में लगाये रखो।

८. वीता समय पुनः आना नहीं, भविष्य का पता नहीं, अतः वर्तमान का ही सही उपयोग करो।

९. इन्द्रियों का दमन मत करो, बल्कि इनके प्रवाह को संसार की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर मोड़ने का प्रयास करो।

१०. शरीर से संसार की सेवा होती रहे और मन से परमात्मा का स्मरण होता रहे, इसी में मानव जीवन की सफलता व सार्थकता है।

११. अपना तथा अपनों का पेट तो किसी प्रकार पशु-पक्षी भी भर लेते हैं, मानव होकर अगर तुम भी ऐसा ही करते हो तो उनमें और तुममें अन्तर ही क्या रहा ?

१२. अगर जीवन में मस्ती चाहते हो तो उसका एक ही उपाय है कि अपनी हस्ती (अहंकार) को मिटा दो।

१३. आप अपने विचारों से ही सबल या दुर्बल बनते हैं। कायरता पूर्ण विचारों को विवेक का आश्रय लेकर दूर कर दो, फिर पता चलेगा कि वास्तव में तुम क्या हो।

१४. परिस्थतियों को नहीं, अपनी मनः स्थिति को बदलने का प्रयास करो।
१५. भौतिक सुख परमात्मा का विस्मरण तथा दुःख परमात्मा का स्मरण कराता है।
१६. संसार से सेवा चाहोगे तो उसमें आसक्ति बढ़ेगी और भगवान् छूट जायेंगे।
१७. बाह्य श्रृंगार वास्तविक सौन्दर्य नहीं है। सत्य, क्षमा, प्रेम, सद्भाव आदि सद्गुणों से युक्त अन्तःकरण वाला व्यक्ति ही वास्तव में सुन्दर है।
१८. कण्ठ की शोभा गहनों से नहीं, अपितु राम नाम गाने से है।
१६. रोगों का इलाज औषधालय में नहीं, भोजनालय में देखिए। अधिकतर रोगों का जन्म गलत भोजन से ही होता है।
२०. प्रातः काल जल पीना, टहलना तथा व्यायाम करना इतना ही आवश्यक है, जितना कि भोजन करना आवश्यक है।
२१. एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिये तथा सप्ताह में एक दिन मीठा व एक दिन नमक छोड़ने का अभ्यास करें।
२२. भोजन स्वाद के लिये नहीं, बल्कि जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए है।
२३. भोजन का भजन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भोजन इतना ही करना चाहिये कि भूख न सताये। अधिक भोजन से आलस्य आता है और भजन में बाधा बड़ती है।
२४. भोजन के साथ जल न पिये, एक घण्टा पहले या एक-डेढ़ घण्टा बाद पीना हितकर है।
२५. भोजन करने के बाद दूसरा भोजन पाँच-छः घण्टे बाद करें।
२६. भोजन में छिलके सहित दाल, माण्ड समेत चावल तथा चोकर सहित आटे की रोटी का प्रयोग करना अधिक उत्तम है।
२७. शरीर को निरोग रखने के लिये कम खाओ। और मन को निरोग रखने के लिए गम खाओ।
२८. भोजन भगवानको भोग लगाकर शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे चबा कर करना

चाहिये।

२९. सदा साथ न रहने वाले धन के द्वारा सैदव साथ रहने वाला यश अर्जित करना ही बुद्धिमान व्यक्ति का कर्तव्य है।

३०. सही समय पर सही काम ही सफलता की कसौटी है।

३१. मनुष्य काम न छोड़े किन्तु कामना छोड़नी पड़ेगी। इसी प्रकार वास (घर) न छोड़े किन्तु वासना छोड़नी पड़ेगी। कामना और वासना तो उसकी भी पूरी नहीं हो सकी जिसके यहाँ स्वयं भगवान पुत्र बनकर अवतरित हुए।

३२. बस गई जिनके दिलों में मोहिनी सूरत श्याम की।
वस कट गई उनकी मुसीबत निधि मिली आराम की।।

३३. आराम की तलब है तो आ राम की शरण में।

३४. मानसिक शांति एवं आत्मिक आनन्द के अभाव में भौतिक विकास अधूरा है।

३५. तीन सजावत देश को दाता, सन्त और शूर।
तीन लजावत देश को, कृपण, कपटी, क्रूर।।

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा,
रात बीती सुबह को उतर जायगी।
एक बार फकीरी का जाम पी ले जरा,
तेरी सारी जिन्दगी सुधर जायगी।।

□□□

(३०)

गोस्वामी श्री मृदुल कृष्ण शास्त्री का उपदेश

१. देह से व्यक्ति अमर नहीं होता, नाम से अमर होता है।

२. अमृत केवल कृष्ण कथा या रामकथा में है।

३. भागवत जीवन में जीना ही नहीं, मरना भी सिखाती है।

४. राह दे, यानि जीवन को राह देने वाली राधा।

५. भक्ति का विश्वविद्यालय वृन्दावन है, उसकी आचार्य हैं गोपांगनाएँ।

६. हम दूसरे का दोष क्या देखें जब कि हम स्वयं दोषों से भरे पड़े हैं।

७. यह सही है कि दूध में घृत है, लेकिन घृत का स्वाद नहीं मिलता। उसी प्रकार यह भी सही है कि वृक्ष के डंठल में फल लगते हैं लेकिन डंठल को चबाने से फल का स्वाद नहीं मिलता।

८. मन को ठीक करने का एकमात्र रास्ता है सत्संग में जाना।

९. कथा दानव से मानव एवं मानव से देव बना देती है।

१०. धनहीन कहे धनवान सुखी, धनवान कहे राजा सुखी। न धनवान सुखी, न राजा सुखी।

११. माया के दीवानों सुन लो,एक दिन ऐसा आएगा, धन दौलत और खजाना यहीं का यहीं रह जाएगा।

१२. विषयों को विष की तरह त्याग दो।

१३. सामान्य व्यक्ति इन्द्रियों को विषय भोग से विरत रखते हैं। भक्तिरस में डूबा व्यक्ति इन्द्रियों का पूरा उपयोग करते हैं। नेत्रों से प्रभु का दर्शन, जिह्वा से प्रभु का वर्णन एवं कान से प्रभु के प्रसंग सुनने का आदि-आदि।

१४. भागवत के प्रारम्भ में सत्य, मध्य में सत्य और अन्त में भी सत्य

है। "सत्यम् परम् धीमहि।"

१५. राजकुमार का झूठा मोती का हार भी सच्चा लगेगा और गरीब का सच्चा मोती का हार भी झूठा लगेगा।

१६. अन्य चीजों में दान के वक्त पात्रता का ध्यान नहीं रखे तो चलेगा लेकिन कन्या, भूमि एवं गाय का दान करते समय पात्रता का ध्यान आवश्यक है।

१७. मनुष्य का कल्याणकारी मार्ग है प्रभु की निष्काम भक्ति।

१८. प्रेम में अपने सुख की कामना नहीं होती, अपने प्रेमास्पद के सुख की कामना होती है।

१६. जीव आत्म तत्व की जानकारी कर ले तो परम तत्व की जानकारी हो जाएगी।

२०. संन्यास याने आसक्ति का त्याग।

२१. कभी कभी महापुरुषों के सान्निध्य से हमें कुछ नहीं मिलता, जिज्ञासु भाव पैदा होना चाहिए।

२२. सन्त का स्वरूप क्या है? सहनशीलता है, दया है, करुणा है। प्रत्येक प्राणी में संत आत्मिक भाव रखता है, समता का दर्शन करता है।

२३. शिव कहते हैं, जिसमें सारा जगत शयन करे।

२४. पुत्र कपूत हो या सपूत, धन संचय की आवश्यकता नहीं।

२५. मन ही बन्धन है, मन ही मोक्ष है। जैसे एक ही चाभी से ताला बन्द भी होता है और खुलता भी है।

२६. जिसको धुन लग जाय उसको ध्यान की आवश्यकता नहीं।

२७. सन्त मुक्ति की युक्ति जानते हैं।

२८. प्रेम व्यक्ति या वस्तु के लिए नहीं होता, यह तो सबके लिए होता है।

२९. संसार वह जो सरकता जा रहा है।

३०. गज और ग्राह क्या हैं। यह गज मानव है। संसार सरोवर है, ग्राह काल है।

३१. लीला माने जो हमें परमात्मा में लीन कर दे।

३२. जैसे मिठाई की दुकान में हलवाई मिठाई चखा देता है लेकिन मांगने पर ही माल देता है उसी प्रकार जिज्ञासु के पूछने पर ही गुरु बताते हैं।

३३. नारद जिसकी बात कभी न रद्द होवे। देव दानव मानव सभी उनकी बात मानते हैं।

३४. भगवान अवतरित इसलिए होते हैं कि अपने आचरण से हमें सीख देते हैं।

३५. नन्द वह जो दूसरे को आनन्द दे।

३६. यशोदा जो दूसरे को यश दे।

३७ गोपी माने जो अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों से कृष्ण रस का पान करे।

३८. हम प्रेम करें और प्रभु कृपा करें तो ही प्रभु बन्धन में आते हैं।

३९. सन्त के क्रोध में भी कला रहती है।

४०. कृष्ण स्वयं रसावतार हैं।

४१. नटराज शिव हैं, नटवर कृष्ण हैं।

४२. रस से रास बना हैं, रसों के समूह को ही रास कहते है।

४३. अग्नि से जैसे शीत मिटती है, आपके पास बैठकर मेरे संशय मिटते हैं।

□□□

(३१)

भाईजी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार की सूक्तियां

१. दुनिया में दो चीजें हैं – भगवान और भगवान की लीला। जड़-चेतन सब कुछ भगवान हैं और जगत में जो कुछ हो रहा है, वह उनकी लीला है।

२. जब भगवान कल्याणमय-मंगलमय हैं, तब उनकी लीला भी वस्तुतः कल्याणकारी-मंगलमयी ही है।

३. ऐसा कोई स्थान नहीं है और ऐसा कोई समय नहीं है जिसमें भगवान न हों एवं ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिस पर भगवान की कृपा न हो, जिसको भगवान अपनाने से इन्कार करते हों।

४. भगवान परम आश्रय हैं। चाहे सारा संसार तुम्हें भूल जाय, चाहे घर-परिवार के सभी लोग तुमसे मुंह मोड़ लें, चाहे तू सर्वथा निराश्रय हो जाओ, एक बार हृदय से उनके परम आश्रयत्व पर विश्वास करके मन ही मन उनका स्मरण करो। देखोगे, तुम्हें कितना शीघ्र और कितना मधुर, निश्चित आश्रय मिलता है।

५. भगवान सर्वशक्तिमान है। तुम्हारा दुःख चाहे कितना ही प्रबल हो, तुम्हारे संकट चाहे कितने ही पहाड़ जैसे हों, और विपत्ति चाहे किसी से भी न टलने वाली हो, भगवान की शक्ति के सामने सभी तुच्छ हैं। तुम विश्वास करके सर्वशक्तिमान को पुकारो।

६. उनकी शक्ति अविलम्ब तुम्हारी सहायता करेगी और तत्काल तुम्हारे पहाड़ से दुःख काजल की ढेर की तरह उड़ जायेंगे।

७. याद रखो, विश्व के रूप में साक्षात् भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं। जीव के रूप में शिव ही विविध लीला कर रहे हैं। इसलिए तुम किसी से घृणा न करो, किसी का भी अनादर न करो, किसी का अहित मत चाहो। निश्चय समझो-यदि तुमने स्वार्थवश किसी जीव का अहित किया, किसी के हृदय में चोट पहुँचायी तो वह चोट तुम्हारे भगवान के ही

हृदय में लगेगी। तुम चाहे जितनी देर अलग बैठकर भगवान को मनाते रहो, जब तक सर्व भूतों में स्थित भगवान पर तुम स्वार्थवश चोट करते रहोगे, तब तक भगवान तुम्हारी पूजा कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

८. सुख चाहते हो तो दूसरों को सुख दो। मान चाहते हो तो मान प्रदान करो। हित चाहते हो तो हित करो। बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रखो, जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल मिलेगा। फल की न्यूनाधिकता जमीन के अनुसार होगी।

९. जब तक तुम्हें अपना लाभ और दूसरे का नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तब तक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे।

१०. जब तक तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरे की निन्दा प्यारी लगती है, तब तक तुम निन्दनीय ही रहोगे।

११. जब तक तुम्हें अपना सम्मान और दूसरे का अपमान सुख देता है, तब तक तुम अपमानित ही रहोगे।

१२. जब तक तुम्हें अपने लिए सुख की और दूसरे के लिए दुःख की चाह है, तब तक तुम सदा दुःखी ही रहोगे।

१३. जब तक तुम्हें अपने लिए सुख और दूसरे को ठगना अच्छा लगता है, तब तक तुम ठगाते ही रहोगे।

१४. जब तक तुम्हें अपने दोष नहीं दिखते और दूसरों में खूब दोष दिखते हैं, तब तक तुम दोषयुक्त ही रहोगे।

१५. जब तक तुम्हें अपने हित की और दूसरे के अहित की चाह है, तब तक तुम्हारा अहित ही होता रहेगा।

१६. जो लोग दिन-रात अशुभ संकल्प करते रहते हैं, वे स्वयं तो दुःखी रहते ही हैं, जगत को स्वाभाविक ही अपने अशुभ भावों का दान देकर उन्हें फैलाकर सबको न्यूनाधिक रूपसे दुःखी करते हैं। इसी प्रकार शुभ संकल्प करने वाले पुरुष स्वयं सुखी होते हैं और संसार के सब प्राणियों

को भी सुखी करते हैं।

१७. याद रखो-जिस कार्य से परिणाम में अपना और दूसरों का हित हो, वही धर्म है और जिसके परिणाम में अपना और दूसरों का अहित हो, वही पाप है।

१८. जब तक तुम्हें अपना लाभ और दूसरे का नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तब तक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे।

१९. जब तक तुम समझते हो कि मैं उत्तम हूँ, मैं ऊँचा हूँ, दूसरे लोग निकृष्ट हैं, दुर्गुणी हैं, नीचे हैं, तब तक तुम जगत का कल्याण नहीं कर सकते।

२०. अपनी सारी सम्पत्ति पर विश्वरूप भगवान का अधिकार मानकर, जहाँ-जहाँ दीन हैं, जहाँ-जहाँ गरीब हैं, अभावग्रस्त हैं, असमर्थ हैं, वहाँ-वहाँ उपयोगी सामग्री उनकी सेवा में लगाते रहो।

२१. मनुष्य के व्यवहार में--मानव जीवन में--एक बात अवश्य आ जानी चाहिए कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन मन, इन्द्रिय जो कुछ है, उनसे जहाँ-जहाँ अभाव की पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हें लगाते रहो। ऐसा करना ही पुण्य है, सत्कर्म है, धर्म है।

२२. जहाँ अन्न का अभाव है, वहाँ भगवान अन्न के द्वारा तुम्हारी सेवा चाहते हैं।

२३. जहाँ जल का अभाव है, वहाँ जल के द्वारा, जहाँ वस्त्र का अभाव है, वहाँ वस्त्र के द्वारा और जहाँ आश्रय का अभाव है, वहाँ आश्रय द्वारा सेवा चाहते हैं।

२४. यह ध्यान रहे कि हमारी सेवा किसी के सिर को कभी नीचा न कर दे।

२५. जहाँ तक हो सके, सेवा को प्रकट न होने दो। प्रकट हो जाय तो सकुचाओ और सच्चे मन से उसका श्रेय भगवान को दो।

२६. सेवा करके अभिमान न करो। जिसकी सेवा करते हो, उससे कुछ चाहो मत। उससे किसी बात की आशा न करो। वह हमारा कृतज्ञ हो, ऐसी कल्पना मन में मत उठने दो। उस पर कोई एहसान न जताओ। उस पर

अपना अधिकार न मानो। उसके दोषों को, अभावों को देखकर घबराओ मत। उस पर झुँझलाओ मत। उसका तिरस्कार न करो।

२७. सेवा करके विज्ञापन न करो। जिसकी सेवा की है, उस पर बोझ मत डालो। नहीं तो तुम्हारी सेवा पुनः स्वीकार करने में उसे संकोच होगा और पिछली सेवा के लिए, जो उसने स्वीकार की थी, उसके मन में पछतावा होगा।

२८. तुम्हारा चरित्र कलुषित या दूषित हो तो तुम लोक-सेवा कर ही नहीं सकते। लोक-सेवा तुम उस सामग्री से ही तो करोगे, जो तुम्हारे पास है। दुनिया के सामने तुम वही चीज रखोगे, उसको वही पदार्थ दोगे, जो तुम्हारे अन्दर है। दुनिया को तुम स्वाभाविक ही वही क्रिया सिखलाओगे, जो तुम करते हो।

२९. सुनने वाले लाखों हैं, सुनाने वाले हजारों हैं, समझने वाले सैकड़ों हैं, परन्तु करने वाले कोई बिरले ही हैं। सच्चे पुरुष वे ही हैं, और सच्चा लाभ भी उन्हीं को प्राप्त होता है, जो करते हैं।

३०. भक्त मानव सभी प्राणियों में अपने परम इष्टदेव, अपने परमाराध्य भगवान के दर्शन करता है तथा इस दृष्टि से प्राणिमात्र को सदा-सर्वदा परम पूज्य, परम सम्मान्य, परम आदरणीय तथा नित्य सेवनीय मानता है। वह अपने को अनन्य सेवक और प्राणिमात्र को अपने स्वामी श्री भगवान का स्वरूप समझ कर सदा सबकी सेवा में लगा रहता है। सबके सामने सदा नत रहकर अत्यन्त विनय-विनम्रता का व्यवहार करता है और अपने सब कुछ को भगवान की सम्पत्ति मानकर सर्वस्व के द्वारा उनकी सेवा करता रहता है। इस सेवा-स्वीकार को वह उनकी कृपा मानता है। सेवा-बुद्धि प्रदान करने, सेवा में निमित्त बनाने तथा सेवा स्वीकार करने में भगवान की कृपा को ही कारण समझकर वह सदा-सर्वदा कृतज्ञ हृदय से भगवान का स्मरण-चिन्तन करता रहता है। उसके पवित्र तथा मधुर अन्तःकरण में सदा निर्मल समर्पण की पवित्र-मधुर सुधा-धारा बहती रहती है। वह केवल चेतन प्राणी में ही अपने भगवान को नहीं देखता, जड़ प्राणियों में भी वह अपने

भगवान के नित्य दर्शन करके प्रणाम, पूजन तथा समर्पण आदि के द्वारा उनकी सेवा करता रहता है।

३१. मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य है- भगवत् प्राप्ति। इस उद्देश्य को निरन्तर सामने रख कर ही हमारे सारे कार्य, सारे व्यवहार, सारे विचार, सारे संकल्प-विकल्प और मन-बुद्धि तथा शरीर की सारी चेष्टाएं होनी चाहिए। सबकी अबाध गति निरन्तर भगवान की ओर हो। यही साधन है। भगवान साध्य है और यह जीवन उसका साधन है। इसी में जीवन की सार्थकता है, अतएव बुद्धि, मन, प्राण और इन्द्रियाँ-सबको सर्वभाव से श्री भगवान की ओर अनन्य गति से लगा देना चाहिए। हम कुछ भी काम करें, कुछ भी विचार करें, ''भगवान ही हमारे जीवन के एक मात्र लक्ष्य हैं'' यह स्मृति सदा जागृत रहनी चाहिए।

३२. सत्य को पाने के अनेक मार्ग हैं। विविध दिशाओं में उस एक की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। जो जिस दिशा में है, वह अपनी दिशा में ही उसकी ओर चलेगा। सब एक दिशा में नहीं चल सकते, क्योंकि सब एक दिशा में हैं ही नहीं। हाँ, सबका लक्ष्य वह एक ही है। इसलिए अन्त में सब उस एक ही में पहुँचेंगे, परन्तु दिशाभेद के अनुसार मार्ग तो भिन्न-भिन्न होंगे ही। तुम जिस मार्ग से चलते हो, वह भी ठीक है और दूसरा जिससे चलता है, वह भी ठीक हो सकता है। तुम्हारा और उसका लक्ष्य तो एक ही है। फिर विवाद किस बात का। इसलिए अपने मार्ग पर चलो, सावधानी के साथ अग्रसर होते रहो। दूसरों की ओर मत ताको। न किसी को गलत समझो और न अपने निर्दिष्ट मार्ग को छोड़ो।

३३. जगत् को कुछ भी दिखाने की भावना न रखकर हृदय को शुद्ध बनाओ। बुरी वासना और दुर्गुणों को हृदय से निकाल कर उसे दैवी गुणों और भगवत् प्रेम से भर दो। अपने को अपने सर्वस्व और अपनेपन सहित भली-भाँति भगवान के प्रति समर्पण कर दो। तुम्हारे अन्दर भागवती शक्ति अवतीर्ण हो जायेगी।

□□□

(३२)

अनमोल वचन

१. श्रद्धा ज्ञान देती है, नम्रता मान देती है और योग्यता स्थान देती है।

२. धर्म में नीति नहीं है तो धर्म विधुर है और नीति में धर्म नहीं तो नीति विधवा है।

३. संसार वृक्ष है। वृक्ष का मूल भगवान है। मूल को जल दो, वृक्ष खिल जाता है। पत्तों पर पानी डालने की जरूरत नहीं।

४. पुरुषार्थ, प्रार्थना और प्रतीक्षा के समन्वय से प्रभु का प्राकट्य होता है।

५. संतों की सेवा एवं उनके सत्संग से समाधान, शांति एवं श्रेयस् की प्राप्ति होती है।

६. अव्यग्र रह कर कर्तव्य पालन ही जीवन का आदर्श है।

७. सहयोग और समन्वय का मार्ग ही श्रेयस्कर होता है।

८. जो संसार से विमुख होकर परमात्मा के सम्मुख हो गया है, वही वास्तव में योगी है।

९. जो अन्य को हानि पहुँचा कर अपना हित चाहता है, वह मूर्ख अपने लिये दुःख के बीज बोता है।

१०. अगर दुष्ट लोग फलीभूत हो रहे हैं और तू कष्ट भोग रहा है तो निराश न हो, उन्हें विनाश के लिये चर्बीला बनाया जा रहा है, तुम्हें स्वास्थ्य के लिए पथ्य पर रखा जा रहा है।

११. विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, योग्य पात्र और परम भक्ति ये सब मनुष्य को इच्छित फल देते हैं।

१२. जो विधान बन चुका है, उसे भोगना ही पड़ेगा--कराह कर भोगें अथवा सराह कर भोगें।

१३. भगवान जो कुछ करते हैं, वह परम मंगलकारी होता है। उसमें प्रपंच की निवृत्ति ही होती है, प्रवृत्ति नहीं।

१४. देखने में तो ऐसा लगता है कि समय जा रहा है, पर वास्तव में शरीर जा रहा है।

१५. भगवान सर्वसमर्थ होते हुए भी हमारे से दूर होने में असमर्थ है।
१६. सोया हुआ आत्म-विश्वास जग जाने पर विजयश्री चेरी बन जाती है।
१७. वास्तव में सब कुछ छोड़ देने के बाद ही सब कुछ मिलता है।
१८. सत्पुरुष नीयत खराब करके नियति नहीं बिगाड़ते।
१९. जीवन का रहस्य ही यह है कि सुख से सटो मत और दुःख से हटो मत।
२०. संत किसी के गुलाम नहीं होते, वे तो गुलाब हैं, चतुर्दिक् सुगंध फैलाते रहते हैं। यहां तक कि तोड़ने पर भी श्रृंगार ही करते हैं।
२१. विज्ञान और अहिंसा की जोड़ी होनी चाहिए।
२२. पंच-मंच-लंच में हम एक हो जाते हैं, पर भजन में एक नहीं होते।
२३. भगवान दोषी पर उतने नाराज नहीं होते, जितने दंभी पर।
२४. जो भगवान के मंगलमय विधान को स्वीकार कर लेता है, वह सदा निश्चिन्त और निर्भीक रहता है।
२५. सुविधा, सम्मान, स्नेह यह सब देना चाहिए, लेने की कामना नहीं रखनी चाहिये।
२६. जीवन में जब श्रद्धा का बसन्त आ जावे तो संत स्वतः ही पधार जावेंगे।
२७. वर्तमान और कर्तव्य में हम स्वतन्त्र हैं, जब कि भविष्य एवं फल मे अधीन हैं।
२८. काम और प्रेम दोनों सर्वथा भिन्न हैं। कोयला और हीरा में यद्यपि दोनों में कार्बन है, किन्तु कोयला काम और हीरा प्रेम है।
२९. सतत नाम-स्मरण भगवान का सान्निध्य प्राप्त कराने में पूर्ण समर्थ है।
३०. स्वार्थ ही विष और त्याग ही अमृत है।
३१. धन की तीन गतियां होती हैं - दान, भोग और नाश। अतः इस विनाशी धन को विश्वरूप में विराजित अविनाशी प्रभु की सेवा में लगा देने में ही इसकी सार्थकता है।
३२. मरण रूपी शेर सदैव सामने खड़ा रहे तो फिर मनुष्य किस बल पर

पाप करेगा ?

३३. भक्ति के उदर से ज्ञान का जन्म होना चाहिए। भक्ति रूपी लता में ज्ञान के पुष्प खिलने चाहिए।

३४. स्तुति, उपासना, प्रार्थना, अंधविश्वास नहीं, बल्कि यही एकमात्र सत्य है। दूसरी सब बातें मिथ्या हैं।

३५. मुँह से राम नाम बोलते समय वाणी को हृदय का सहयोग मिलना चाहिये, भावनाशून्य शब्द ईश्वर के दरबार तक नहीं पहुंचते।

३६. कमल के पत्तों पर पड़ी हुई बूंद जितनी तरल है, उससे भी ज्यादा चंचल यह जीवन है, लेकिन इसमें क्षण भर का भी सत्संग भवसागर तरने के लिए नौका बन जाता है।

३७. मानवता के तीन शत्रुः जल्दबाजी, चिन्ता, मिर्च-मशाला।

३८. कक्ष के चार कोने होते हैं। एक कोने में काल खड़ा है। दूसरे में माया खड़ी है। तीसरे में प्रारब्ध है। चौथे में परमात्मा है किन्तु भगवान की ओर जीवन उन्मुख हो जाय तो तीनों की जिम्मेदारी वे स्वयं ले लेते हैं।

३९. शरीर के कठिन से कठिन रोग तो मरने के साथ ही समाप्त हो जाते हैं, परन्तु काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सरता, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा और बैर आदि मानस रोग तो मरने पर भी जीव के साथ जाते हैं।

४०. वाणी के लिये चार गुण हैं, सारं-सुष्ठु-मितं-मधुः। यानी सारपूर्ण, सुन्दर शब्दों में, संक्षिप्त और मधुर।

४१. विपत्ति में धीरज न छोड़ कर उसे भगवान की देन मानकर सम्पत्ति के रूप में परिणत कर लेना चाहिये। फिर विपत्ति का दुःख मिटते देर न लगेगी।

४२. वासना भगवान और भक्ति में व्यवधान उत्पन्न करती है तथा भावना एवं उपासना भगवान और भक्त को मिलाती है।

४३. समाज रूपी खेत में बोये दानों की फसल ढेरों सोना उगल सकती है, यदि निःस्पृह भाव से समाज देवता की आराधना की गयी हो।

४४. "ही" में अटकने, अड़ने पर खून, जबकि "भी" में प्रेमाश्रुओं की सरस धारा।

४५. समाधि लगाने वाला योगी, योगी है। व्यवहार में रहकर दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहने वाला परम योगी है।

४६. गीता कामधेनु है, भगवान कल्पवृक्ष हैं। तुम जो भी भावना लेकर इनके पास पहुँचोगे-वह पूरी होगी।

४७. दुःख को सहर्ष स्वीकार कर लेना ही परम तप है। दुःख से दबकर जब हम दुःखहारी भगवान की शरण में हो जाते हैं, तब हमारी सारी बाधाएं दूर हो जाती हैं।

४८. भगवान के स्वरूप-संविधान और संबन्ध का सर्वकाल चिन्तन मनन करते रहना चाहिये।

४६. गीता अपौरुषेय वेद-वाणी के समान स्वप्रकाश है। गीता श्रुति है, उपनिषद है। साक्षात् श्री कृष्ण के हृदय की विद्या है। उनके अनुभव की पोथी है।

५०. जितने समय भगवत् स्मरण होता है, वही समय जाग्रत है। संसार का स्मरण क्यों रहे, वह तो स्वप्न है।

५१. कलियुग में भक्ति मार्ग सर्वश्रेष्ठ, सुलभ और सर्वोपयोगी है एवं संकीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ सरल सुन्दर साधन है।

५२. सारी दुनिया को नचाता है ईश्वर और ईश्वर को नचाता है प्रेम।

५३. मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं इस अभिमान में मस्त रहना चाहिए।

५४. नित्य में अनित्य का आरोप ही अविद्या का लक्षण है।

५५. जो अपनी जिन्दगी को गतिशील बना लेते हैं, वे जन्म को तो छोड़िये, मौत को भी जीत लेते हैं।

५६. मन की जीत ही जग की जीत है।

५७. भगवान शिव ज्ञानस्वरूप हैं, भगवान श्री कृष्ण प्रेम स्वरूप हैं।

५८. कोई सद्गुरु न मिले तो शिवजी को अपना सद्गुरु मान लें, वह तो

जगत्-गुरु हैं।

५९. राम-चरित्र अनुकरणीय है-श्रीकृष्ण चरित्र चिन्तनीय है।

६०. माँ कौशल्या राम की जननी थीं, पर सीता माँ जगत-जननी हैं।

६१. रामायण-रामकथा सागर की तरह है।

६२. श्रीराम जी का नाम श्रेष्ठ है, श्रीकृष्ण जी की लीला श्रेष्ठ है।

६३. राम चरित्र दिव्य है किन्तु सीता जी का चरित्र अति दिव्य है।

६४. श्रीराम जी का नाम ही सरल है और स्वरूप भी सरल है।

६५. संसार छोड़ने से परमात्मा नहीं मिलता-परमात्मा मिलने से दुनिया अपने आप छूट जाती है।

६६. जीवन एक नाटक है-अपनी भूमिका अदा करें
जीवन एक यात्रा है-अच्छे से पूरा करें।
जीवन एक चुनौती है - सामना करें।
जीवन एक संगीत है - गाते चलें।
जीवन एक मीत है - निभाते रहें।
जीवन एक गति है - गतिशील रहें।
जीवन एक सपना है - साकार करें।
जीवन एक पहेली है - हल करें।
जीवन धन अनमोल है - रक्षा करें।
जीवन एक समस्या है - समाधान करें।
जीवन एक प्रेयसी - उससे प्यार करें।
जीवन एक संघर्ष है - सामना करें।

६७. गुरु एक फूल है - शिष्य उसकी सुगंध। गुरु एक दीपक है-शिष्य उसकी ज्योति।

६८. गुरु को शिष्य की कौन सी बात अनजानी है, सागर को मालूम है कि बूंद में कितना पानी है।

६९. जैसा मैं चाहूं, वैसा हो जाये, यह इच्छा जब तक रहेगी, तब तक शान्ति नहीं मिल सकती।

७०. जो घटे और बढ़े वह चांद है, जो बढ़ती ही जाय वह तृष्णा है। जो न घटे न बढ़े वह भाग्य है, जो घटता ही रहे वह आयुष्य है।

७१. कायरता पूछती है, कार्य में कोई खतरा तो नहीं।
स्वार्थ परायणता पूछती है, इसमें कोई चालाकी तो नहीं।
अंहकार पूछता है, क्या वह लोकप्रिय है।
लेकिन चेतना पूछती है, क्या यह उचित है।

७२. केवल अन्तरिक्ष की खोज में न रहें, अन्तर की खोज भी करें।

७३. करुणा की परिणति प्रेम में ही होती है।

७४. जो प्रेम को महत्व देता है वह स्वयं महान है, और जो महान है वह प्यार तथा भक्ति से नत-मस्तक रहता है। आवश्यकता इन्सान को व्याकुल करती है, प्रेम इन्सान को शान्त बनाता है। शीश झुकाना ही मनुष्यता है।

७५. नित्य हंसमुख रहो, मुख को मलिन कभी न करो। यह निश्चय कर लो कि चिन्ता ने तुम्हारे लिए जगत में जन्म ही नहीं लिया, फिर आनन्द स्वरूप में सिवा हंसने के स्थान ही कहाँ है ?

७६. जैसे दो मुसाफिर राह चलते रास्ते में किसी एक जगह मिल जाते हैं, फिर थोड़ी देर विश्राम करने के बाद अपनी-अपनी राह पर चले जाते हैं, वही हाल हमारे सांसारिक सम्बन्धों का है, पहले प्रारब्ध-वश तो हम मिलते हैं, फिर प्रारब्ध-वश ही बिछुड़ जाते हैं।

७७. पुण्य की जड़ हमेशा हरी रहती है,यह ईश्वरीय न्याय अटल और शाश्वत है।

७८. इस संसार में अपेक्षा कभी किसी की पूरी नहीं होती तथा आवश्यकता किसी की अधूरी नहीं रहती। वास्तव में हमारी आवश्यकताएं बहुत कम हैं। अपेक्षायें ही अधिक हैं।

७९. योग से शक्तियों का विकास, भोग से शक्तियों का विनाश और त्याग से शांति की प्राप्ति होती है।

८०. जैसे शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, ऐसे ही पारमार्थिक जीवन

के लिये सत्संग होना चाहिए।

८१. सूर्य-चन्द्रमा की तरह हमारा जीवन सबके लिये सुखकारी और सबके लिये हितकारी होना चाहिये।

८२. थोड़ा पढ़ना, अधिक सोचना, कम बोलना, अधिक सुनना यही बुद्धिमान बनने के उपाय हैं।

८३. समय बहुत कीमती है। करोड़ों रुपये खर्च करके भी नया क्षण नहीं बना सकते।

८४. जीवन का सत्य तब मालूम होगा, जब हमारे जीवन में श्रद्धा और विश्वास का मिलन होगा।

८५. संत महापुरुषों के सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन बनाना ही उनकी सच्ची सेवा है।

८६. शरीर की स्वच्छता के लिए स्नान करना जरूरी है। उसी तरह मन की स्वच्छता के लिये साधना आवश्यक है।

८७. कर्तव्यनिष्ठ होते ही सभी उलझनें अपने आप सुलझ जाती हैं।

८८. मौन सत्य शोधक के लिए बड़ा सहायक होता है। मौन ही सर्वोत्तम भाषण है।

८९. प्रार्थना आत्मा को साफ करने का झाड़ू है। सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना चमत्कार कर सकती है।

९०. जहां प्रेम है, वहां जीवन है। स्वयं परमात्मा वहीं है।

९१. व्यक्ति के सदाचारी मानस में ही लक्ष्मी अचल निवास करती है।

९२. जो परमात्मा सीप में पानी की बूंद को मोती बनाता है। जो बच्चों के पैदा होते ही माता में दूध उत्पन्न करता है, जो पुष्प में सुगन्ध उत्पन्न करता है, जो खानों को जवाहरों से भरपूर रखता है और आकाश, सूर्य, चांद, तारों को बिजली एवं तेल के बिना प्रकाशित करता है, वह परमात्मा हम सब का हर प्रकार से कल्याण करेगा।

९३. जिस कुल में स्त्री-पुरुष एक दूसरे से संतुष्ट रहते हैं उस कुल का अवश्य कल्याण होता है।

९४. दूसरों के दोषों का न प्रचार करो, न चर्चा करो और न याद ही करो। भगवान सर्वान्तर्यामी हैं। वे ही सबके फल का भी विधान करते हैं। तुम बीच में पड़ कर अपनी बुद्धि का दिवाला निकालने क्यों जाते हो और झूठी सच्ची कल्पना करके क्यों दोषों को ही बटोरते हो?

९५. तुम पर भगवान की बड़ी कृपा है, तभी तो तुम्हें मनुष्य का देह मिला है। यह और भी विशेष कृपा समझो, जो तुम्हें भजन करने की बुद्धि प्राप्त हुई और भजन के लिये सुअवसर मिला। इस सुअवसर को हाथ से मत जाने दो।

९६. जो धर्म को त्यागता है, धर्म उसे त्याग देता है। जो समय नष्ट करता है, उसे समय नष्ट कर देता है। जो धर्म का पालन करता है, जो ईश्वर के आश्रित होकर अपने कर्तव्य का पालन करता है, ईश्वर उसका पालन करता है।

९७. जिसको अपने जीवन में एक बार भी सच्चे संत के दर्शन का, उससे उपदेश प्राप्त करने का और उसकी चरणधूलि सिर चढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया, वह परम आनन्द और परमशांति का सतत अधिकारी हो गया।

९८. सफलता प्रयास की प्रेयसी है। जहां प्रयास है, वहीं सफलता है। सफलता प्रयास को गले लगाती है, प्रमाद से दूर भागती है। वह चलने वाले पर रीझती है, बैठने वाले पर खीझती है। यही उसका परिचय है, यही उसका स्वभाव है।

९९. प्रतिदिन सुबह उठते ही यह दृढ़ निश्चय करो कि आज मैं किसी पर क्रोध नहीं करूंगा। तुम्हारा निश्चय सच्चा होगा तो उस दिन क्रोध तुम पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकेगा।

१००. गीता में ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी है, इसके मनन और आचरण से मानव सुखी और शांतिपूर्वक रह सकता है। जीवन की सभी समस्याओं के समाधान का जो आध्यात्मिक संदेश गीता में दिया गया है, वह मानव मात्र के लिये कल्याणकारी है।

१०१.अन्त समय सुधारना, हो तो प्रतिक्षण सुधारो।
१०२.जीवन के अन्तिम क्षण तक सत्कर्म करते रहो।
१०३.दृष्टि को ऐसी गुणमयी बनाओ, जिससे किसी के दोष दीखें ही नहीं।
१०४.तन और मन दोनों को सदैव सत्कर्म में प्रवृत्त रखो।
१०५.द्वेष पर प्रेम से विजय प्राप्त की जा सकती है।
१०६.संसार में दूसरे को मत रुलाओ, रुलाने वाले को स्वयं रोना पड़ता है।
१०७.जिसका स्वभाव अत्यधिक सुन्दर होता है, वह भगवान को प्यारा होता है।
१०८.दूसरे का अपमान करने वाला स्वयं अपनी जाति का अपमान है।
१०९.अधिक कुछ न बन सके तो उदास बैठे हुए को हंसाओ।
११०.जीतने के लिए कोई चीज है तो मन।
१११. अतिशय सादा जीवन व्यतीत करो। जिसका जीवन सादा है, वही सच्चा साधु है।
११२.दूसरे को ठगने वाला स्वयं ठगा जाता है।
११३. किसी का अपमान मत करो, मान-दान सबको प्रिय है।
११४.सात्विक व्यवहार के बिना सहन शक्ति नहीं आती।
११५.निन्दा व निद्रा पर विजय प्राप्त करके ही भजन किया जा सकता है।
११६.तुम्हारी कोई निन्दा करे तो तुम शान्ति से सहन करो।
११७.फैशन और व्यसन के पीछे समय और सम्पत्ति नष्ट मत करो।
११८.सेवा करने वाले पर संत और भगवान की कृपा बरसती है।
११९.जहां नीति वहां नारायण, जहां परोपकार वहां प्रभु-कृपा है।
१२०.सतत कार्यरत रहो पर काम करते समय भी भगवान को मत भूलो।
१२१.किसी का आशीर्वाद प्राप्त न कर सको तो हानि नहीं, किन्तु किसी का अन्तःकरण दुःखित कर शाप तो मत लेना।
१२२.मेरा सुख किसी अन्य के दुःख का कारण न बन जाय।
१२३.विचार सब पराये होते हैं, आचार ही अपना होता है।

१२४.जो चीज जहां खो गई, वहीं मिलती है। शान्ति खो जाती है परिवार में, खोजने जाते हैं हरिद्वार में।

१२५.शास्त्र रास्ता देता है, सद्‌गुरु दृष्टि देता है।

१२६.तुम्हारा सबसे बड़ा परिचय तुम्हारी मधुर वाणी है।

१२७.भोजन करो पर भजन न छोड़ो। बड़े प्रासाद में रहो पर प्रसाद समझ कर रहो।

१२८.प्रेम दुर्लभ से भी नहीं किया जाता और अनभिज्ञ से भी नहीं किया जाता है।

१२९.जिसको कुछ नहीं चाहिए, उसको सब कुछ मिल जाता है।

१३०.अभिमान कभी करना नहीं। स्वाभिमान कभी छोड़ना नहीं।

१३१.मंदिर बहुत बने, अब मानव मन्दिर बनना चाहिए।

१३२.कार बहुत बढ़ रही है। संस्कार घट रहे हैं। जबकि संस्कार बढ़ाने की जरूरत है।

१३३.भगवान कृष्ण ने प्रयास किया, युद्ध न हो लेकिन जब युद्ध लड़ा तो पूरे मनोयोग से।

१३४.आध्यात्मिक व्यक्ति अनासक्त होकर रहता है।

१३५.बालक बड़े प्रिय हैं लेकिन वे हमेशा बालक बने रहें, कोई नहीं चाहता।

१३६.एक अपना पेट नहीं पाल सकता, दूसरा लाखों का पेट पालता है। एक कभी बीमार नहीं पड़ता दूसरा कभी स्वस्थ नहीं रहता। एक की जवानी जाती नहीं, दूसरे की जवानी आती नहीं। बचपन से सीधे बुढ़ौती आ गयी, सबके मूल में संकल्प का भाव या अभाव है।

१३७.आवत हर्ष न ऊपजे, जावत शोक न होय।
ऐसी रहनी जो रहे, घर में जोगी सोय।

१३८.आसन मारे क्या हुआ, मरी न मन की आस।
ज्यों कोल्हू के बैल को, घर ही कोस पचास।।

१३९.अहंकार राक्षस महा दुःखदायी सब भांति।
जीते जो इस दुष्ट को सोई पावै शांति।।

१४०. दूध में मक्खन रहता है, पर मथने से ही निकलता है।
वैसे ही जो ईश्वर को जानना चाहे वह उसका साधन-भजन करे।

१४१. मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंग में डुबाओगे वही रंग चढ़ जायेगा।

१४२. संसार में रहकर जो साधन कर सकते हैं, यथार्थ में वे ही वीर पुरुष हैं।

१४३. प्रतिदिन करने योग्य दस बातें

- आज मुझसे किसी को कष्ट तो नहीं पहुंचा ?
- अमुक मनुष्य ने कटु वाक्य कहे थे, मुझे उस पर क्रोध तो नहीं आया?
- यदि कोई भला काम मुझसे हो गया है, तो मेरे दिल में अभिमान तो नहीं आया ?
- मैंने आज अनुचित प्रकार से कोई पैसा तो नहीं कमाया ?
- आज किसी परायी स्त्री पर मेरी कुदृष्टि तो नहीं पहुंची ?
- मैंने किसी के सामने अपनी प्रशंसा तो नहीं की ?
- आज कितना समय किस कार्य में व्यर्थ गंवाया ?
- आज मुझसे किसी की बुराई तो नहीं हुई ?
- यदि लोग मुझे अच्छा कहते हैं, तो मैं अपने आपको महात्मा तो नहीं मानने लगा ?
- मेरा मन किसी स्वामी जी या सद्गुरु की पदवी तो लेना नहीं चाहता है ?

१४४. चिन्ता आयु को खा जाती है।

१४५. रिश्वत इन्साफ कों खा जाता है।

१४६. सबसे अच्छा दान क्षमा कर देना है।

१४७. सबसे अच्छी बहादुरी बदला न लेना है।

१४८. प्रायश्चित्त पाप को धो देता है।

१४९. नेकी बदी को खा जाता है।

१५०. तदबीर जैसी कोई बुद्धिमानी नहीं।

१५१. विद्या से बढ़कर कोई दौलत नहीं।

१५२. जो आहार भद्र न रहने दे, वह त्याज्य है।

१५३. भगवत् भजन में बाधक व्यसन त्याज्य है।

१५४. चल दिया जो चीर कर अंधेर है, राह में रुकता नहीं जो शेर है,
जब तलक जलता रहे अंगार है, बुझ गया तो राख का इक ढेर है।"

१५५. "जो न पूरा हो उसे अरमान कहते हैं,
जो न बदले बस उसे ईमान कहते हैं,
जिन्दगी प्यासी भले ही बीत जाए पर,
जो नहीं झुकता उसे इन्सान कहते हैं।"

१५६. आत्मा की आवाज सुनो। उस पर अमल करो। यही ईश्वरीय आदेश है।

१५७. जो खुशी कल तुम्हें दुःखी करने वाली है, उसे आज ही त्याग दो।

१५८. जो डरता है कि मुझे कोई जीत न ले, वह जरूर हारेगा।

१५९. लोभी मनुष्य की कामना कभी पूरी नहीं होती।

१६०. काम की अधिकता नहीं, अनियमितता मनुष्य को मारती है।

१६१. अच्छी नसीहत मानना अपनी योग्यता बढ़ाना है।

१६२. यह सुनिश्चित तथ्य है कि व्यक्ति का चरित्र बल और मनोबल न बढ़ सका तो वह सब कुछ साधन होते हुए भी दुर्बल है।

१६३. मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। वह अपनी प्रवृत्तियों और कृतियों के आधार पर ही अपने भविष्य को उज्ज्वल या अंधकारपूर्ण बना सकता है।

१६४. मनुष्य उस धातु का बना है जिसकी संकल्प भरी साहसिकता के आगे कभी भी कोई अवरोध टिक नहीं सका है।

१६५. डूबेगा रे तीन जना

- पूंजी कम व्यापार घना।
- ताकत कम गुस्सा घना।
- आमदनी कम खर्चा घना।

१६६. हृदय में अगर पवित्रता है तो चरित्र में सौन्दर्य होगा।

चरित्र में सौन्दर्य है तो घर में सामंजस्य होगा।
घर में सामंजस्य है तो व्यापार में सत्यता होगी।
व्यापार में सत्यता हो तो राष्ट्र में अनुशासन होगा।
राष्ट्र में अनुशासन है तो संसार में शान्ति होगी।

१६७. भूत-सपना है। भविष्य-कल्पना है। वर्तमान-अपना है।

१६८. जिसमें न धैर्य हो, न शौर्य हो, उसे कोई सम्मान नहीं देता।

१६९. जिसकी क्रियाएं विकाराधीन न होकर विचाराधीन होती हैं, उन्हीं को सम्मान मिलता है।

१७०. बिना सोचे विचारे बोले गए शब्द कटार की तरह बेधते हैं जिनपर विवेक की जिह्वा मरहम का कार्य करती है।

१७१. जो बात आपको अनुकूल न हो उसका विरोध मत करें, धैर्य से विचार करके समाधान निकालने से शान्ति मिलेगी।

१७२. अणु मात्र भी अपना मत समझें क्योंकि जब शरीर छूटता है, सभी छूट कर यहीं पर रह जाते हैं।

१७३. सब के प्रति हित, मित, प्रिय वचन बोलें, इससे अपने आप में एक तृप्ति उत्पन्न होगी। यही अपनी रक्षा का कवच है।

१७४. मेरी कोई भी चेष्टा देह में नहीं है तथा देह की किसी भी चेष्टा में 'मैं' (शुद्धात्मा) नहीं है। अतः परिणामों में समता ही सच्चा पुरुषार्थ है।

१७५. अपने बच्चों की बातें धैर्यपूर्वक सुन कर प्रेमपूर्वक जवाब दें। उनके हस्तक्षेप/विरोध से बचते हुए उनके प्रति शिष्टता ही मातृत्व है।

१७६. मन के विचार एवं संकल्प-विकल्प ही दिवास्वप्न हैं, इनसे बच कर अपने आत्म-स्वभाव का रसपान ही सच्चा पुरुषार्थ है।

१७७. बाहर देखकर भीतर में निर्णय मत बनाओ, अपितु भीतर देखकर बाहर में निर्णय बनाओ, कारण कि अनुकूलताओं में फंसने का तथा प्रतिकूलताओं से निकलने का अवसर सदैव बना रहता है।

१७८. शान्ति परिश्रम में नहीं, विश्राम में समाहित है। कल्याण कठिनाई से

नहीं, वरन् सरलता से होता है। सुखानुभूति कर्तृत्व, भोक्तापने की बुद्धि छोड़ने से प्राप्त होती है, मोक्ष किसी भी पक्ष व्यामोह के छोड़ने से मिलता है।

१७९. शरीर, धन, सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्र जगत जीवन के सभी संयोग ध्रुव नहीं हैं अर्थात् सदा के साथी नहीं हैं, अस्थिर हैं, विनाशक हैं। अविनाशी ध्रुव तो एक आत्मा ही है।

१८०. धैर्य रूपी पिता, क्षमा रूपी माता, शान्ति रूपी गृहणी, सत्य रूपी मित्र, दया रूपी बहिन, पृथ्वी तल रूपी शैयूया, दिशा रूपी वस्त्र, ज्ञानामृत भोजन और धर्म ही सर्व श्री परिवार है।

१८१. वस्तु का स्वभाव धर्म है, धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा संयम और तप उसके लक्षण हैं।

१८२. मैं एक व्यापारी। व्यापार मेरा कर्म। दुकान मेरा मंदिर। ग्राहक मेरा देवता। मेहनत मेरी पूजा। ग्राहकों का संतोष। यही मेरा प्रसाद।

१८३. तीन चीजें किसी की प्रतीक्षा नहीं करतीं -
समय, मृत्यु और ग्राहक

१८४. तीन चीजें भाई-भाई को दुश्मन बनाती हैं -
जर, जोरू और जमीन

१८५. तीन चीजें याद रखना जरूरी है -
सच्चाई, कर्तव्य और मौत

१८६. तीन चीजें कोई दूसरा चुरा नहीं सकता -
अकल, चरित्र और हुनर

१८७. तीन चीजें निकल कर वापस नहीं आतीं -
तीर कमान से, बात जबान से और प्राण शरीर से।

१८८. तीन चीजें जीवन में एक बार मिलती हैं -
माँ, बाप और जवानी

१८९. तीन चीजे पर्दे योग्य हैं -
धन, स्त्री और भोजन

१६०. इन तीनों का सम्मान करो -
माता, पिता और गुरु ·

१६१. जरा सोचिये
क्रोध बुद्धि को खा जाता है। घमण्ड ज्ञान को खा जाता है। प्रायश्चित्त पाप को खा जाता है। लालच ईमान को खा जाता है।

१६२. प्रेम परमात्मा का ही स्वरूप और स्वभाव है, इसी में रस है, भाव है। रस ही श्रीकृष्ण है और भाव ही श्रीराधा, श्रीराधा-कृष्ण से प्रेम होने में ही जीवन का मंगल है, इसका हृदय में उदय होना नाम संकीर्तन से ही संभव है। संकीर्तन करने से हृदय का कूड़ा-कर्कट निकल जाता है और उसमें अनुराग का भाव उदय होता है।

१६३. यदि हम ठीक से विचार करें तो ज्ञात हो जायेगा कि सदा साथ देनेवाला तो केवल एक कृपामय परमात्मा ही है, इसलिये हम सबको उन्हीं के चरणों में शरण लेनी चाहिये।

१६४. पूजा की खास विधि अथवा शब्दों को ईश्वर नहीं देखता, वह तो हमारे भाव और वाणी को आर-पार से देखता है।

१६५. जिसमें जितना प्रेम है, वह उतना ही ईश्वर के समीप पहुँचा हुआ है। वह प्रभुमय बनने की राह में है क्योंकि प्रभु स्वयं अपार प्रेममय है।

१६६. कृष्ण-चन्द्र श्यामा बने, राधा बन गई श्याम, दोनों सदा अभिन्न हैं इनको कोटि प्रणाम।

१६७. यदि प्यार की वर्षा से जीवन की बगिया को सींचते रहेंगे, तो ये विकसित मुस्कुराते हुए पुष्प मुस्कुराकर हमारे जीवन पथ को अपने खुशबू से हमेशा महकाते रहेंगे।

१६८. विश्व से प्रेम करने में सार नहीं है, कारण कभी संतोष नहीं मिलेगा। किन्तु यदि एक 'विश्वनाथ' से प्रेम हो जाये तो इसमें सब समा जायेगा। विश्व तो उनमें ही समाया है न!

१६९. विग्रह का श्रृंगार करने से मन शुद्ध होता है, इससे प्रभु हर समय

मानस पटल के आगे आते रहते हैं।

२००. राम नाम सब वेदों का सार है, भगवान का सतत स्मरण करो।

२०१. ठाकुर तो प्रेम की टूटी-फूटी भाषा से भी प्रसन्न हो जाते हैं। सच्चे प्रेम का एक आँसू ही उन्हें रिझा देने के लिए बहुत है, पर वैसा आंसू ढुलकाने वाला कोई हो तब न !

२०२. निराकार परमात्मा का अनुभव करो और साकार प्रभु-संपूर्ण जगत से प्रेम करो।

२०३. भक्ति तो प्रेम है और प्रेम के मार्ग में दूसरे को पाने के लिये अपना सब कुछ समर्पण करना ही पड़ता है, प्रेम का पंथ ही ऐसा है, जहां इन्सान स्वयं को भूल जाता है, प्रेमी में अपनी समग्रता ढूंढ़ता है।

२०४. हरि भजन बिना सुख-शान्ति नहीं। हरि नाम बिना आनन्द नहीं। प्रेम भक्ति बिना उद्धार नहीं। गुरु-सेवा बिना निर्वाण नहीं। जप-ध्यान बिना संयोग नहीं। प्रभु दरस बिना प्रज्ञान नहीं।

२०५. जीवात्मा लोक में रहता है, पर ज्ञानी आलोक में रहता है।

२०६. मन का अर्थ है अतीत का स्मरण, वर्तमान का चिन्तन और भविष्य की कल्पना।

२०७. हम सब सुई को देखकर विचलित होते हैं, क्योंकि यह तो जहां जायेगी सब जगह छेद ही छेद कर देगी। किन्तु धागा जो उसके साथ रहता है, कहता है-केवल दोष दर्शन का ही कार्य क्यों करते हो, वह हम दो को एक भी तो बनाती है, नहीं तो हमें एकता का अनुभव ही कैसे हो-दृष्टिकोण बदलना होगा।

२०८. सफलता की पृष्ठभूमि संकल्प है।

२०९. अकेलेपन का बोध न होना ही विरक्ति है।

२१०. प्रभु की आवाज (मुरली की तान) निरंतर हमारे अन्दर गूँजती रहती है, हम बाहर के शोरगुल में इतने खो गये हैं कि इस शाश्वत ध्वनि को सुन नहीं पाते हैं।

२११. अपना हर एक कर्म परमात्मा की पूजा बना दें।

२१२. विचार कर्म के बीज हैं।

२१३. सच्चे द्रष्टा तो वे हैं, जो मृत्यु में जीवन और जीवन में मृत्यु देख सकें।

२१४. गुलाब के पुष्प को हम कोई भी नाम क्यों न दें, किन्तु वह तो सुगन्ध से भरा हुआ एक पुष्प है, जो हर समय सुवास देता ही रहेगा।

२१५. नासमझी ही नहीं, ज्यादा समझ भी खराब करती है।

२१६. हर समय किसी कामना से ही अपने ठाकुर को याद न करें। वे हमारे हैं, हम उनके हैं। यह प्रेम ऐसा हो कि उनके बिना रहा न जाये। इसमें कोई कारण नहीं होना चाहिये। बस यही तो प्रेम है।

२१७. धनवान वही है, जिसके पास भजन की पूंजी है।

२१८. सूत्र में पुष्पमाला गुंथी रहती है और सूत्र से अलग हो जाने से पुष्प बिखर जाते हैं, वैसे ही परमात्मा के अस्तित्व के बिना यह जीवन बिखर जाता है।

२१९. प्रेम परमात्मा का ही स्वरूप और स्वभाव है, इसी में रस है, भाव है। रस ही श्रीकृष्ण हैं और भाव ही श्री राधा।

२२०. न हम सबके लायक, न सब हमारे लायक बन सकते हैं, कहीं तो सामंजस्य बैठाना ही होता है।

२२१. हर मनुष्य अपने में महान है, देखने के लिये दृष्टि चाहिये।

२२२. बिछोह भी आवश्यक है, सूखे पत्ते झड़कर पेड़ को नया सौन्दर्य प्रदान करते हैं।

२२३. मृतक को श्मशान तक पहुंचाने वालों की संख्या और भावना से ही उसका जीवन आँका जा सकता है।

२२४. इंसान के पग-पग पर समस्याओं का जाल बिछा है, उसे समेटने के लिये उसके पास विचारने की शक्ति भी है, वह समाधान खोजे और अपना पथ स्वयं प्रशस्त करे। समस्याओं के सामने घुटने टेकने से इंसान जीवन में सफल नहीं हो सकता।

२२५. विष्णु का ही नहीं, वैष्णव का भी आदर करो।

२२६.अधिक प्रचार इन्सान को पथ भ्रष्ट कर देता है।

२२७.केवट विलक्षण भक्त है, रामजी संसार सागर के केवट हैं।

२२८.मनुष्य का चरित्र दो बातों से समझा जा सकता है : १. उसकी विचार धारा। २. समय बिताने का ढंग।

२२९.जैसे दिन और रात कभी भी एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही वासना और भगवान दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

२३०.तीन आँसू पवित्र हैं :- प्रेम, करुणा, सहानुभूति के। तीन बातें देखने योग्य हैं :- अपने दोष, दूसरों के गुण, सज्जनों के कृत्य।

२३१.मौत को याद रखो पर डरो नहीं, उसका समय निश्चित है।

२३२.हवन के धुएं से, सूर्योदय के दर्शन से उम्र बढ़ती है।

२३३.महंगी से महंगी और सस्ती से सस्ती चीज - राम का नाम।

२३४.जब तक अन्तःकरण पूर्णरूप से शुद्ध नहीं होता है, सप्त-ऋषियों का दर्शन असम्भव है, इसके लिए अन्तःकरण की शुद्धता चाहिये।

२३५.संसार का वियोग तथा परमात्मा का योग स्वतः सिद्ध है।

२३६.अपने स्वभाव का सुधार इन्सान खुद ही कर सकता है, दूसरा तो उसको सिर्फ राह दिखा सकता है, सहायता कर सकता है।

२३७.कल्याण की प्राप्ति बहुत सुगम है, पर यदि उसको पाने की इच्छा ही नहीं, तो वह सुगमता किस काम की।

२३८.सांसारिक नाते-रिश्ते मकड़ी के जाल हैं। व्यक्ति स्वयं इन रिश्तों का निर्माण करता है, इनमें उलझता है, फिर दुःखी होता है।

२३९.जहाँ अपनापन होता है, वहीं अपेक्षाएं भी होती है,

२४०.फूल प्रकृति का उपहार,
धरती माता का श्रृंगार,
ये बतलाते जीवन का सार,
कहते फूल सदा मुस्काओ,
जीवन में खुशियाँ बिखराओ,
परहित अपना ध्येय बनाओ।
हर जगह महक फैलाओ।

२४१. अन्त (मृत्यु) कभी सहारा का इन्तजार नहीं करती, वह निरपेक्ष रहती है, स्वावलम्बी रहती है। किसी समस्या अथवा कष्ट का भय उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकता।

२४२. स्वयं के पुरुषार्थ पर भरोसा रखना चाहिये, तभी हम अपनी मंजिल तक पहुँच सकेंगे।

२४३. आप अपने हाथ से एक सूत में अनेक फूल पिरोओ, माला बन जायेगी, ऐसे ही मन में एक ही प्रभु का स्मरण बार-बार आने दो, साधना बन जायेगी।

२४४. दूसरों को देने से धन फलता है, कभी घटता नहीं, दीप से दीप जलता है, कभी जलाने वाला दीप बुझता नहीं।

२४५. हमें प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये, मेरे ठाकुर यह सारी दुनिया तेरा मंदिर बने।

२४६. गर्ज में जिसे पुकारा, गर्म में उसी को नकारा, क्या यही इन्सान है?

२४७. प्रभु की लीला माधुर्य की है, किन्तु जानकी जी की लीला ऐश्वर्य का प्रतीक है।

२४८. इच्छा आकाश के समान अनन्त है, व्यक्ति का अन्त होता है, पर इच्छाओं का नहीं। इसलिए कहा जाता है कि जिसने अपने अंदर झांक लिया है, उसने सब कुछ पा लिया है।

२४९. ज्ञान श्रद्धा से मिलता है, भक्ति विश्वास से मिलती है।

२५०. जन्म-मृत्यु के बीच का छोटा सा जीवन पूर्ण जीवन नहीं, इहलोक -परलोक मिलकर जो जीवन बनता है, वही सच्चा तथा पूर्ण जीवन है, इस विवेक से जो जीता है, उसी का जीवन सफल होता है।

२५१. किसी की परवाह न करें, पर सबके प्रति अपना कर्तव्य अवश्य करें। जैसा जिसका विचार है, वैसा ही उसका संसार है।

२५२. प्रसन्नता तो चन्दन है, दूसरों के मस्तिष्क पर लगाइये, आपकी उंगलियां स्वयं महक उठेंगी।

२५३. याद करने का अतीत है। कल्पना के लिये असीम भविष्य, लेकिन

कुछ करने के लिये तो वर्तमान ही होता है।

२५४.जैसा हम वर्तमान बनायेंगे, उसके अनुरूप ही तो भविष्य बनेगा, वर्तमान बिगाड़ने वाला भविष्य को स्वयं धुंधला बना देता है।

२५५.प्रेम के आगे ज्ञान पानी भरता है, भक्ति के आगे विद्वत्ता हाथ बांधे खड़ी रह जाती है।

२५६.कोई विपत्ति-विपत्ति नहीं है, कोई सम्पत्ति-सम्पत्ति नहीं है। प्रभु का विस्मरण ही विपत्ति है, प्रभु का स्मरण ही मानव की सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

२५७.अन्तःकरण संकल्प विकल्प करे तब तक मन कहलाता है, निर्णय करे तब बुद्धि कहलाती है।

२५८.बन्धन और मोक्ष का कारण मन है, लोग चाबी से ताला बन्द करते हैं जिस चाभी से ताला बन्द होता है उसी चाभी से खुलता भी है। बन्द करना और खोलना ये दोनों क्रियाएं परस्पर विरुद्ध होने पर भी दोनों काम एक ही चाभी करती है।

२५९.यदि वृक्ष की जड़ ही काट दी जाए, तो पत्ती पर पानी डालने पर भी वह कब तक हरी रह सकेगी ?

२६०.जब तक प्रकाश है, मोती पिरो लो, नहीं तो फिर अंधेरा हो जायेगा। ऐसे ही मनुष्य शरीर रहते रहते हरि-भजन कर लो, न जाने कब साँस रुक जाये।

२६१.बसंत झड़े हुए पत्तों को नहीं बटोरता---नए उगाता है।

२६२.एक आदर्श संन्यासी होने की अपेक्षा एक आदर्श गृहस्थ होना अधिक कठिन है।

२६३.मंदिर की सफाई देखकर पवित्रता का अनुमान लगा लेना चाहिए।

२६४.बदलावा प्रकृति का शाश्वत नियम है, जीवन में होने वाले परिवर्तन कभी हंसाते हैं, तो कभी रुलाते हैं। क्यों न अपनी मानसिकता को ऐसा बना ले जो हर सांचे में ढल सके, और कोई अप्रिय स्थिति पैदा ही न होने पाए।

२६५.दूसरों को पहचानना है तो पहले अपने आपको पहचानना होगा।

२६६ बेहतरीन फूलों के साथ कांटे लाजमी तौर पर होते हैं। कांटे साथ होनेसे गुलाब की न खुशबू कम होती है, न खूबसूरती। इंसान की जिन्दगी में अगर कांटे हैं तो फूल भी हैं, कांटो को हटाना और फूलों को चुनना ही इंसान के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

२६७.सर्वोत्तम दिन - आज।
सबसे बड़ी भूल - समय की बरबादी।
सबसे बड़ी बाधा - अधिक बोलना।
सबसे बड़ा गुरु - प्रेरणा देने वाला।
बुद्धिमानी - सुने सबकी, करे मन की।

२६८.जैसे सूर्य आकाश में छिप कर नहीं रह सकता, वैसे महापुरुष भी जगत में छिपे नहीं रह सकते।

२६९.दोस्ती की बुनियाद है विश्वास।

२७०.बालक सिर्फ बालक ही नहीं है वह तो पूरा भविष्य है। पर उसे सुसंस्कारों के आधार का खिलौना चाहिये। पवित्र परिवेश में पलने दो, प्रभात के पुष्प की भांति खिलने दो, धूप-दीप की तरह जलने दो, गिर जाये तो खुद सम्भलने दो। इन नन्हें पौधों को स्वयं ही फूलने फलने दो। तभी तो यह बालक समाज का पालक बनेगा।

२७१.जैसे मेंहदी हरी दिखती है, लेकिन उसमें लाली छिपी रहती है। वैसे ही इस नश्वर शरीर में शाश्वत चेतना छिपी रहती है। उस चेतना का जो दीदार कर लेता है, वह सब कुछ पा लेता है।

२७२.ऐसी कोई बूंद नहीं जो जल से भिन्न हो, ऐसा कोई जीव नहीं जो परमात्मा से भिन्न हो, ऐसी कोई तरंग नहीं जो बिना पानी के बह सके, ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जो चैतन्य प्रभु के बिना रह सके।

२७३.वक्त ने वक्त पर वक्त दिया होता,
तो आज क्या हो गया होता।
वक्त पर यदि अन्तर जाग गया होता,

तो आज बहुत कुछ हो गया होता।।

२७४. स्त्री पुरुषों से जानती कम, पर समझती अधिक हैं। प्रबुद्ध नारी श्रद्धा प्रेरणा और ज्ञान की जीवित मूर्ति होती है। परिवार की धुरी घर की नारी होती है।

२७५. नारी तुम ही जग की निर्माता हो, मानो तो सचमुच में एक विधाता हो, सुर-नर की अनुपम श्रद्धा हो, करुणा की पावन प्रतिमा हो, इस प्रणय जीवन की महिमा हो, गृहस्थी-रूपी वाहन की नारी तुम एक पहिया हो, घर-संसार की खेवैया हो।

२७६. पुरुष युगों से स्त्री को उसकी शक्ति के लिये नहीं, अपितु सहनशक्ति के लिये ही दंड देता आ रहा है।

२७७. स्त्री का हृदय स्नेहयुक्त और आर्द्र होता है, उसमें समर्पण की भावना होती है।

२७८. यदि हम अपने प्रत्येक कर्तव्य कर्म को परमात्मा के आगे समर्पित कर देते हैं, तब अपना छोटा-बड़ा कर्म परमात्मा की पूजा का फूल बन जाता है, फिर प्रत्येक कर्म भक्ति बन जाता है।

२७९. फल के बड़े होने पर फूल अपने आप गिर जाता है, इसी प्रकार देवत्व के बढ़ने पर ममत्व का ह्रास होने लगता है।

२८०. तारे सभी तक जगमगाते हैं, जब तक कि सूर्य नहीं उगता, इसी प्रकार जब तक प्रभु में मन नहीं लगता तभी तक सांसारिक विषय अच्छे लगते हैं।

२८१. प्रेम अन्धा है, यह कहना गलत है। असल में प्रेम के अतिरिक्त अन्य सभी अन्धे हैं, प्रेम ही एक ऐसा अमोघ वाण है जिसका लक्ष्य कभी व्यर्थ नहीं जाता, उसका निशाना ठीक लक्ष्य पर ही बैठता है।

२८२. जिस घर में परमात्मा की सेवा, भजन होता है, वहां ठाकुर निवास करते हैं।

२८३. भगवान स्वयं अपने में एक योग है, क्षर को अक्षर से, क्षणभंगुर को शाश्वत से, प्रकृति को पुरुष से, नर को नारायण से मिलाने वाला

ही योगी है।

२८४. मंत्र ही भगवान है। मंत्र के द्वारा हम भगवान तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं। भगवान मंत्र के अधीन है। जब हम मंत्र का पाठ करते हैं तो ऐसा लगता है कि हम ठाकुर के साथ बात कर रहे हैं, यह अपने में एक उपलब्धि है।

२८५. भक्ति तो वह धारा है जो स्वयं अपनी सतह ढूंढ़ लेती है, उसके संग किसी तरह का बंधन नहीं हो सकता। ईश्वर के सब गुण भक्ति से स्वतः प्रकट हो जाते हैं।

२८६. भक्ति प्रिय भगवान तो सिर्फ भाव से संतुष्ट होते हैं-गुणों से नहीं, भक्ति एक प्रकार का समर्पण है, अपने आराध्य देव के प्रति अपने प्रेम का।

२८७. वह क्षण, जिसमें प्रभु का स्मरण होता है धन्य है, वह स्थान जहां संत समागम होता है धन्य है, संत समाज बगीचा है, संतों का हृदय सरोवर।

२८८. सभी काल ग्रस्त हैं, अनित्य हैं, परम शान्ति देने वाला परमात्मा ही तो शाश्वत है। हम तभी तक सौभाग्यशाली हैं, जब तक दुःख को दुखदायी न मानें। उसी में अक्षय आनन्द की प्राप्ति है।

२८९. कष्ट पाकर नतीजा यदि सुखदायी है, तब फिर कष्ट कैसा।

२९०. दर्शन योग्य :

दान - कर्ण का, वाण - अर्जुन का, सौभाग्य - सावित्री का, सत्य - हरिश्चन्द्र का।

२९१. मेरे राम, मेरी अभिलाषा है कि मेरे अंदर आपकी अनंत-शक्ति, अनंत-ज्ञान, प्रेम और शाश्वत-आनन्द की अनुभूति बनी रहे।

२९२. काम ऐसे करो, मानो अभी सौ साल जीना है, भजन ऐसे करो जैसे कल ही मर जाना है।

२९३. हे प्रभु, मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी वाणी केवल आपका ही गुणगान करे, मेरे नेत्र सर्वत्र आपके ही दर्शन को व्याकुल रहें, मेरा

हृदय आपके ही स्पर्श को प्राप्त हो।

२६४. श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं, तो श्रीराधा सर्वेश्वरी हैं। श्रीकृष्ण पर-ब्रह्म हैं तो श्रीराधा उनकी परा-शक्ति हैं, श्रीराधा और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। श्रीकृष्ण ही श्रीराधा हैं, श्रीकृष्ण प्रेम की डोर में बंधे प्रियाजी के समक्ष भौंरे की भाँति मंडराया करते हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण दो भिन्न तत्व नहीं हैं, ये दोनों एक ही ज्योतिपुंज से दो भिन्न रूपमें प्रकट हुए हैं। जल और तरंग, कनक और कुडंल, देह और छाया में परस्पर भेद दृष्टिगोचर होता भी है और नहीं भी, इसी प्रकार श्रीराधा एवं कृष्ण उसी परमात्मा के दो रूप प्रकट हैं, पर ब्रह्म तो एक ही माना गया है न, चाहे उसका वर्णन नर-रूप में हो या नारी रूप में, दोनों परस्पर आराध्य और आराधक हैं।

२६५. इस जगत में कुछ भी तो रहने वाला नहीं - न रहेगा शरीर, न रहेगा परिवार, न रहेगा नाम, न रहेगा धन, न रहेगा मान-सम्मान, न रहेगी शान-शौकत, न रहेंगे जगत के प्राणी-पदार्थ, फिर किसका मोह, कैसा शोक ?

२६६. मनुष्य सत्संग से बनता है और कुसंग से बिगड़ता है।

२६७. ज्ञान की दौलत बांटने से खत्म नहीं होती।

२६८. अहंकार मानव को दानव बनाता है।

२६९. मौत और समय इन्तजार नहीं करते।

३००. जब मनुष्य अपने को चालाक और दूसरे को बेवकूफ समझता है तब वह धोखा खाता है।

३०१. चार बातों को याद रखें : बढ़े बूढ़ों का आदर करना, छोटों की रक्षा करना एवं उनपर स्नेह करना, बुद्धिमानों की सलाह लेना और मूर्खों के साथ कभी न उलझना।

३०२. चार चीजों का सदा सेवन करना चाहिये - सत्संग, संतोष, दान और दया।

३०३. चार गुण बहुत दुर्लभ हैं - धन में पवित्रता, दान में विनय, वीरता

में दया और अधिकार में निरभिमानता।

३०४.चार बातें को हमेशा याद रखें – दूसरे के द्वारा अपने ऊपर किया गया उपकार, अपने द्वारा दूसरे पर किया अपकार, मृत्यु और भगवान।

३०५.चार के संग से बचने की चेष्टा रखें – नास्तिक, अन्याय का धन, पर नारी और परनिन्दा।

३०६.जीवन तभी कष्टमय होता है, जब वस्तुओं की इच्छा करते हैं और मृत्यु तभी कष्टमयी होती है, जब जीने की इच्छा करते हैं।

३०७.प्रतिकूलताओं से डरो नहीं। उनका धैर्य और साहस से सामना करो। याद रहे, कठिनाइयां ही आदमी को निखारती हैं। सोना आग में तपने के बाद ही कुन्दन बनता है। उर्दू का शेर है :

सुर्खरू होता है इंसां ठोकरें खाने के बाद ।
रंग लाती है हिना, पत्थर पे घिस जाने के बाद।

३०८.भूल करना मानव का स्वभाव है, लेकिन उसे स्वीकार कर उसमें सुधार करना मानवता है, अन्यथा 'भूल' कर्ता को निगल जाती है।

३०९.अच्छाइयों को जानना अच्छी बात है, पर अच्छा होना बड़ी बात है।

३१०.ठोकर खाकर संभल जाना जागरूकता की निशानी है।

३११.सतर्क वही है जो बिजली की चमक में रास्ता ढूँढ़ ले।

३१२.दुःख दर्पण है, वह दिखाता है। सुख दर्शक है, बस देखता है।

३१३.सबसे बड़ा बनने का प्रयत्न करने वाला सबको छोटा बनाने के दोष का भागी होता है।

३१४.धन जिसकी रक्षा तुम्हें करनी पड़े, वह तुम्हारा रक्षक नहीं हो सकता।

३१५.अपना बुरा करने वाले को भुला देना उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना किसी की भलाई करके भूल जाना। जो तोको काँटे बोये, ताहि बोय तू फूल।

३१६.सत्य स्वयं प्रकाशित होता है, उसे दिया नहीं दिखाना पड़ता है।

३१७.संशयात्मा के लिये अपनी परछाईं ही भूत बन जाती है। शक्की आदमी हर समय तनावग्रस्त रहता है। वहम की कोई दवा नहीं।

३१८.एक दाना भी हाथ से बो दोगे तो पूरा वृक्ष उपहार में मिलेगा।

३१९.जिसे धूल समझ कर ठुकराओगे, वहीं तुम्हारी आँख की किरकिरी बन जायेगा। अतः किसी को तुच्छ न समझो। जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवार।

३२०.गरीब के मुँह पर गरीबी का बखान करना उसका शीलहरण करने जैसा है।

३२१.पहाड़ से गिरने की अपेक्षा नजर से गिरना अधिक खतरनाक है। दूसरों की नजर से भले ही गिरो, लेकिन अपनी नजरों से कभी मत गिरो।

३२२.आदमी अपने गुणों, संगति एवं व्यवहार से पहचाना जाता है, न कि अपनी पोशाक से।

३२३.व्यक्ति का व्यस्त रहना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर होता है।

३२४.मनुष्य जैसा करता है, वैसा भरता है। बबूल का पेड़ बो कर आम के फलों की आशा करना व्यर्थ है।

३२५.सदाचार नींव है, सद्विचार भवन है। नींव मजबूत होगी तो भवन टिक सकेगा।

३२६.पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

३२७.किसी के पाप को देखना, सुनना और कहना भी पाप है।

३२८.स्नान से शरीर की शुद्धि, ध्यान से मन की शुद्धि और दान से धन की शुद्धि होती है।

३२९.सत्संग एक पारसमणि है, जो लोहे जैसे कठोर एवं मन के काले व्यक्ति को भी चमकीला व गुणवान बना देती है।

३३०.आचरण की एक बूँद सिद्धान्तों, सलाहों और शुभ संकल्पों के समुद्र से अच्छी है।

३३१.पाप का आरम्भ चाहे प्रातःकाल की तरह चमकदार हो, मगर उसका अन्त रात्रि की तरह अंधकारपूर्ण होता है।

३३२.दुनिया में सबसे कठिन काम अपने को सुधारना और सबसे आसान

काम दूसरों का दोष निकालना है।

३३३.जितना ही सुविधाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न होगा, उतनी ही असुविधाएं होंगी।

३३४.जब जब मन चंचल हो, नामामृत और कथामृत का पान करो।

३३५.परमात्मा तीन पैरों की मांग करता है। वे तीन पग हैं - तन, मन और धन।

३३६.पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन-इन ग्यारह इन्द्रियों को जो प्रभु में लगाये रखे, वह एकादशी का व्रती है।

३३७.समुद्र के खारे जल को पीकर मेघ बदले में मीठा पानी देता है। स्वयं दुःख सह कर मेघ की तरह दूसरों को सुख देवे, वह "संत" है।

३३८.ज्ञान बल, शरीर बल और द्रव्य बल इन सब की हार होती है - जब कि सर्वश्रेष्ठ प्रेमबल की विजय होती है।

३३९.गाय पशु नहीं है, तुलसी जी पौधा नहीं हैं, गंगाजी-यमुना जी जल नहीं हैं, व्रजरज मिट्टी नहीं है, ये सब तो दिव्य हैं।

३४०.कर्कश वाणी से कलह का जन्म होता है।

३४१.कंचन-कामिनी और कीर्ति का त्याग क्रमश : कठिन, कठिनतर और कठिनतम है।

३४२.आकाश में रात्रि के समय बहुत से तारे दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु सूर्योदय होने पर वे अदृश्य हो जाते हैं। इससे यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि दिन के समय तारे नहीं हैं। उसी प्रकार माया जाल में फंसने के कारण यदि परमात्मा नहीं दिखाई पड़े तो मत कहो कि परमेश्वर नहीं है।

३४३.कर्मकाण्ड की कथा सुनने से मंगल नहीं होता। उसका अनुष्ठान करने से मंगल होता है। पर प्रभु-कथा सुनना ही परम मंगल है।

३४४.पानी में जब दूध मिलाया जाता है, तब वह तुरन्त मिल जाता है। किन्तु दूध का मक्खन निकाल कर डालने से वह पानी में नहीं मिलेगा, बल्कि उसके ऊपर तैरने लगता है। उसी प्रकार जब जीवात्मा को

ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है, तब वह अनेक बद्ध प्राणियों के बीच में निरन्तर रहते हुए भी बुरे संस्कारों से प्रभावित नहीं होता।

३४५. भोजन की भांति भजन का भी नियम होना चाहिये।

३४६. इच्छा पर विचार का शासन रहना चाहिये।

३४७. हम भारतीय संस्कृति के संस्थापक भागवत के ऋषभ-पुत्र भरत, रामायण के राम-भ्राता भरत और महाभारत के शाकुन्तल-भरत को प्रणाम करते हैं।

३४८. न करने योग्य कष्टदायक काम को पुनः पुनः करना और करने योग्य भजन का मौका खो देना-यही दो बहुत बड़ी भूलें हैं।

३४९. भगवान और धर्म का दृढ़ सहारा पकड़े रख कर साहस तथा धैर्य के साथ विपत्ति का सामना करना चाहिए।

३५०. सच्चा एकान्त तो मन के निर्विषय होकर भगवत्परायण होने में है।

३५१. काम, क्रोध, लोभ, मोह और प्रमाद आदि का नाश भगवत् कृपा एवं भगवान पर पूर्ण विश्वास होने पर ही होता है।

३५२. तुम अपने को सुखी बनाना चाहते हो तो दूसरों को सुख पहुंचाओ।

३५३. विपत्तियां हमारे लिए गुरु का काम करती हैं। वे हमें बार-बार चेतावनी देकर परमात्मा के सम्मुख करती रहती हैं।

३५४. जब पुण्य का ज्ञान नहीं रहेगा, तब पाप भी नहीं रहेगा। पुण्य का अभिमान करते ही पाप भी तैयार रहता है। इन दोनों का जोड़ा है।

३५५. रणक्षेत्र में जब तलवारें चलती हों, तब उनके प्रहार से अपनी देह की रक्षा के लिए किसी कवच की आवश्यकता होती है। इसी तरह जीवन संग्राम में हम बिना घावों के तभी रह सकते हैं जब कि हमारे तन पर भी कोई ऐसा कवच हो जिस पर कोई भी प्रहार कारगर नहीं हो। ईश्वरीय शक्ति ही वह कवच है, जो संसार में लगने वाले घावों से, मुसीबतों के प्रहार से हमें सुरक्षित रखता है। जिन्होंने इस कवच को पहना, उनके लिए दुःख सुख हो गया। ऋषि दयानन्द ने इसे पहना, उन पर बरसाये पत्थर फूल हो गये। मीरा ने इसे धारण किया, उसके

लिए विष का कटोरा अमृत से भर गया, भयानक कृष्ण-सर्प फूलों में परिवर्तित हो गया।

३५६. दोष देखने वाले को दोष मिलते हैं। गुण देखने वालों को गुण मिलते हैं। संसार देखने वालों को संसार मिलता है और भगवान देखने वालों को भगवान मिलते हैं।

३५७. पाप और पुण्य के पचड़े में क्यों पड़ गये, प्रभु का स्मरण करो और उसकी मर्जी में मस्त रहो।

३५८. भगवान की स्मृति ही स्वर्ग है, भगवान की विस्मृति ही नरक। अब तुम सोच लो कि अपने लिए क्या चुनोगे-स्वर्ग या नरक।

३५९. स्मरण रखो, यदि तुम भगवान की रक्षा में हो तो सारा संसार मिल कर भी तुम्हारा बिगाड़ नहीं सकता। कोई भी शत्रु तुम्हारा अनिष्ट नहीं कर सकता।

३६०. प्रभु के पथ में शूल भी फूल बन जाते हैं। कठिनाइयां सहायक सिद्ध होती हैं और निन्दा राह बुहारती चलती है।

३६१. धर्मग्रन्थ, धर्मबन्धु, विश्वसनीय मित्र, प्रवचन, मधुर संगीत और भजन सब व्यर्थ है -- यदि इनके द्वारा प्रभु का पावन स्पर्श नहीं मिलता।

३६२. प्रभु के सामने सर्वथा नग्न और आवरणहीन हो जाओ - तभी तुम्हारा उसका एकान्त मिलन होगा।

३६३. भगवन की स्मृति मंगलस्वरूप है। भगवान का स्मरण करते ही सारी प्रतिकूलता अनुकूल हो जाती है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाते हैं और जीवन में आनन्द ही आनन्द छा जाता है।

३६४. महान कार्यों के लिए आत्मविश्वास अनिवार्य है।

३६५. सज्जनों के संकल्प, कल्पवृक्ष के फल की भांति शीघ्र परिपक्व हो जाते हैं।

३६६. अमावस्या की घोर निशा के बाद ही शुक्ल पक्ष का उदय होता है। विपत्ति की सीमा होने पर ही सुख के दिन लौटा करते हैं।

३६७.सतत सावधानी सुखी जीवन का रहस्य है।

३६८.अहंकार का नाश करने के लिए सद्भावपूर्वक नमस्कार ब्रह्मास्त्र है।

३६९.जीव के सम्पूर्ण मंगल नाश हो जाते हैं, जब वह महापुरुषों की अवज्ञा, उपेक्षा और तिरस्कार करता है।

३७०.ऐश्वर्य का सत्कार्य में उपयोग करना चाहिए।

३७१.जाति से कोई बड़ा नहीं होता-ब्राह्मण बड़ा है या शूद्र छोटा है ऐसा नहीं।

३७२.पुस्त्क ज्ञान से कोई अपने को ज्ञानी समझे तो उससे बड़ा अज्ञानी नहीं।

३७३.बुध्दि का काम है जानना, मन का काम है मानना। अगर मन नहीं माने तो जानने का अर्थ नहीं।

३७४.जीत ही उनको मिली जो हार से जमकर लड़े हैं
हार के भय से डिगे जो वे धराशायी पड़े हैं।

३७५. सिद्ध एवं साधक में अन्तर है। सिद्ध पुरुष के इन्द्रियां अधीन रहती है, साधक इन्द्रियों के अधीन रहता है।

३७६.अन्याय का प्रतिकार करना ही संघर्ष करना है।

३७७.भारत जमीन का टुकड़ा नहीं, जीता जागता राष्ट्र पुरुष है।

३७८.लेने के लिए कोई चीज है तो ज्ञान।

- देने के लिए कोई चीज है तो दान।
- दिखाने के लिए कोई चीज है तो दया।
- छोड़ने के लिए कोई चीज है तो अहंकार।
- त्यागने के लिए कोई चीज है तो ईर्ष्या।
- जीतने के लिए कोई चीज है तो मन ।

३७९.जिस कुल में स्त्री-पुरुष एक दूसरे से संतुष्ट रहते हैं उस कुल का अवश्य कल्याण होता है।

□□□

(३३)

प्रेरक प्रसंग

(१)

"कर्म का संदेश"

चन्द्रशेखर आजाद हमेशा अपने पास "गीता" रखते थे। एक बार उनके एक साथी ने पूछा, "भाई, एक ओर तो आप धार्मिक पुस्तक "गीता" रखते हो और दूसरी तरफ पिस्तौल साथ रखते हो, इसका क्या मतलब है। एक तो प्राण रक्षक तो दूसरा प्राणघातक।

इस प्रश्न पर चन्द्रशेखर हंसते हुए बोले, "मित्र इन दोनों में से प्राणघातक कोई नहीं है। दोनों ही मेरे प्राणरक्षक हैं। "गीता" मुझे हमेशा प्रेरणा देती रहती है कि कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो। गीता प्रेरणा देती है कि बुराई को सहना पाप है। अंग्रेज भी भारत की बुराई हैं। इसलिए इन्हें सहन करना गीता का अपमान करना होगा। मैं ऐसा नहीं कर सकता। "गीता" तो मुझे कर्म करने का संदेश देती है और पिस्तौल से मैं उस कर्म को पूर्ण रूप देता हूँ, जो वह मुझे बताती है।

(२)

एक बार स्वामी रामतीर्थ जी जापान गये। वहां उनका खूब सम्मान-सत्कार हुआ। उन्हें एक स्कूल में निमंत्रित किया गया था। स्कूल का दौरा करने के दौरान जाने क्या सोचकर स्वामी रामतीर्थ जी ने एक नन्हे से विद्यार्थी से पूछा, "तुम किस धर्म को मानते हो ?" "बौद्ध धर्म को", विधार्थी ने उत्तर दिया।

स्वामी जी ने पुनः प्रश्न किया, "महात्मा बुद्ध के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं ?" विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "बुद्ध तो भगवान हैं।" यह कहकर उसने मन ही मन बुद्ध का ध्यान कर अपने देश की प्रथा के अनुसार प्रणाम किया। तब स्वामी जी ने उस विद्यार्थी से पूछा, "तुम कनफ्यूशियस के बारे

में क्या कहोगे ? विद्यार्थी ने श्रद्धा से कहा, "कनफ्यूशियस एक महान संत थे।" और उसने बुद्ध की ही तरह उन्हें भी प्रणाम किया।

स्वामी रामतीर्थ मुस्कुराकर बोले-'अच्छा, अब मेरे एक प्रश्न का और उत्तर दो। मान लो कोई देश तुम्हारे देश जापान पर आक्रमण कर दे और उसके मुख्य सेनापति बुद्ध या कन्फ्यूसियश हों तो तुम क्या करोगे?"

स्वामी रामतीर्थ का इतना कहना था कि विद्यार्थी का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। वह कड़क कर बोला, "मैं अपनी तलवार से बुद्ध का सिर काट लूंगा और कनफ्यूशियस को अपने पैरों से कुचल दूंगा।"

स्वामी रामतीर्थ यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उस बालक को उठाकर बोले, "जिस देश में तुम्हारे जैसे देशभक्त हों, उस देश का तो कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता।"

(३)
धर्म का अर्थ

एक बार एक राजा ने अपने मंत्री को बुलाकर कहा, "उन सभी पत्रकारों, कवियों व लेखकों के नामों की सूची तैयार करो जिन्होंने समाचार पत्रों में मेरे विरुद्ध लेख इत्यादि लिखा हो। कुछ दिनों बाद मंत्री राजा के पास उन सभी लेखकों के नामों की सूची लेकर उपस्थित हुआ और बोला, "महाराज, मैं नाम लिखकर ले आया हूँ।" "अब तुम इन लेखकों में से ऐसे लेखकों के नाम चुनो जिन्होंने मेरी कड़ी निन्दा की हो। कुछ दिनों बाद मंत्री पुनः राजा के पास आया और बोला, "महाराज, वैसे नाम चुन लिये हैं। अब आप आज्ञा दें कि इन्हें कैसी सजा दी जाय।"

"सजा कैसी ? मैं इनमें से कुछ आलोचकों को चुनूंगा और उन्हें अपना सलाहकार बनाऊँगा। क्योंकि राजा के लिए आलोचक महत्वपूर्ण होते हैं, जो उसका समय समय पर मार्गदर्शन करते रहते हैं।" यह सुन मंत्री नतमस्तक हो गया।

(४)

गुरू नानक जी का चमत्कार

बादशाह है तो क्या, संत का सिर किसी के सामने नहीं झुकता। बाबर चाहता था कि नानक देव उसे सर्वोच्च मानकर अपना सिर उसके सामने कदमों में झुका दें। पर नानक ने ऐसा नहीं किया तो उन्हें कारागार में डाल दिया गया। दमनचक्र से भयभीत करने के लिए चक्की पीसने का कष्टदायक कार्य दे दिया गया। नानक देव चक्की नहीं चला रहे थे। वे तो आंखें बंद किये ध्यानमग्न बैठे थे। कारागार के अधिकारी यह देख रहे थे कि चक्की में बिना दाना डाले ही वह चक्की तक पहुंच रहा है और आटा पिस कर चक्की से बाहर आ रहा है। उधर नानक इससे बेखबर पालथी मारे ध्यान मग्न बैठे हैं। बाबर को जब इसकी जानकारी मिली तो वह नानक के सामने नतमस्तक हो गया।

(५)

सच्चा साधु कौन

एक बार अमेरिका में बुद्धिजीवियों की एक विराट सभा आयोजित हुई। उस सभा में राष्ट्रपति लिंकन स्वयं उपस्थित थे। सभा में सच्चा साधु कौन, इस विषय पर चिंतन मंथन चल रहा था। राष्ट्रपति सारी कार्यवाही शांत भाव से बैठे बैठे देख रहे थे। खूब सोच विचार कर बुद्धिजीवियों ने एक परिभाषा निश्चित कर ली - सच्चा साधु वही है, जिसे जो कुछ खाने पीने को मिल जाय, वह खा पी ले। अगर उसे कुछ भी नहीं मिले तो शांत भाव से ईश्वर भजन में लग जाय।

बुद्धिजीवियों की सभा द्वारा यह परिभाषा सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गयी। सभी ने लिंकन की ओर देखा। राष्ट्रपति लिंकन दोनों हाथ जोड़े खड़े हो गये और बोले- इस परिभाषा में कुछ कमी रह गयी है। ऐसे अपने राष्ट्रपति के कहने पर बुद्धिजीवियों में आत्ममंथन प्रारम्भ हुआ और साथ ही साथ उनकी उत्सुकता भी बढ़ गयी। सभी ने एक स्वर में पूछा-"राष्ट्रपति महोदय, क्या कमी रह गयी है ?"

राष्ट्रपति ने बड़ी विनम्रता से कहा - सच्चा साधु वह है जो कुछ नहीं मिलने पर शांत भाव से ईश्वर चिंतन करे और अगर उसे कुछ खाने-पीने को मिले तो सभी को बांटकर खाये।"

सभी बुद्धिजीवियों की गर्दन हिल उठी और साधुवाद, साधुवाद की ध्वनि गूंज उठी।

(६)

घृणित प्रवृत्ति

बात बहुत पुरानी है। रामलाल और श्यामलाल नामक दो विद्वान थे। एक दिन दोनों किसी के यहां मेहमान बनकर गये। गृहस्थ ने उनका खूब सत्कार किया।

जब रामलाल स्नान करने गया तो गृहस्थ ने श्यामलाल से उसके बारे में पूछा। श्यामलाल ने उत्तर दिया - "वह तो पूरा गधा है। कुछ नहीं जानता।"

जब रामलाल स्नान करके आया तो श्यामलाल स्नान करने गया। गृहस्थ ने रामलाल से श्यामलाल के बारे में पूछा तो वह बोला - "वह मूर्ख बैल है।"

जब भोजन का समय हुआ तो गृहस्थ ने एक गट्ठर घास और एक डलिया भूसा उनके सामने रखा और बोला - "लीजिये महाराज, गधे के लिए घास और बैल के लिए भूसा।"

यह देखकर दोनों विद्वान लज्जित हुए।

(७)

मानव सेवा

एक बार मदर टेरेसा को फटे चीथड़ों में गंदे दिखायी देने वाले कोढ़ियों की सहायता करते देखकर एक अमरीकी महिला ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा - "मैं तो दस लाख डालर लेकर भी यह काम नहीं करती। इस पर टेरेसा ने उसे शांतिपूर्वक उत्तर दिया - "धन के लालच में तो मैं कभी न करती, लेकिन मानवता के लिए तो मैं इससे भी गया गुजरा काम कर सकती हूँ।

(८)
महानता

अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन जब बालक थे, बड़े निर्धन थे। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था। अच्छी-अच्छी और प्रेरणादायक पुस्तकें वे कहीं से भी मांग कर पढ़ लिया करते थे। परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण पुस्तकें खरीद कर पढ़ना उनके लिए संभव नहीं था। एक दिन बालक अब्राहिम एक सज्जन से पुस्तक मांगकर लाए। पुस्तक देते हुए उन सज्जन ने उनसे कहा, "देखो, तुम्हारा शौक देखकर मैं तुम्हें पुस्तक पढ़नें के लिए दे तो रहा हूँ, परन्तु इसे सुरक्षा के साथ और पढ़कर लौटा देना।"

बालक अब्राहम ने कहा, "श्रीमान् मैं आपकी पुस्तक पढ़कर समय पर लौटा दूंगा। आप जरा भी चिन्ता न करें।" बालक अब्राहम लिंकन पुस्तक लेकर घर लौट आया। सर्दी के दिन थे और घर में दीपक की भी व्यवस्था नहीं थी। इसलिए बालक लिंकन अंगीठी जलाकर तापता भी रहा और अंगारों के प्रकाश में पुस्तक पढ़ता रहा। पुस्तक पढ़ते हुए जब लिंकन को नींद आने लगी, तो उसने खिड़की में पुस्तक रख दी और सो गया। उस रात खूब जोरों की मूसलाधार बरसात हुई। पानी की बौछारें खिड़की में आने से पुस्तक गीली हो गई।

बालक लिंकन जब सुबह उठा, तो पुस्तक पानी से भीगी हुई पाई। उसे बहुत ही दुःख हो रहा था। पुस्तक को सही स्थिति में न लौटा सकने के कारण उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे। लिंकन के पास कोई रास्ता नहीं था।

मन में दुःख और आँसू लेकर बालक लिंकन पुस्तक लेकर उन सज्जन के पास पहुंचा और लज्जित भाव से कहने लगा, "श्रीमान् मुझे हार्दिक दुःख है कि मैं आपकी पुस्तक समय पर तो ले आया हूं, मगर सही हालत में नहीं ला सका हूं। इस पुस्तक का मूल्य चुकाने की क्षमता मुझमें नहीं है, फिर भी इस पुस्तक की हानि और हर्जाना भरने के लिए मैं तैयार हूँ।"

सज्जन ने देखा कि बालक ने सारी बात ईमानदारी के साथ कह दी है। वे प्रभावित होकर बोले, "अच्छा ठीक है, तुम अपने घर पर जा सकते हो।"इस पर बालक लिंकन ने कहा, "इस हानि को पूरा किए बिना यदि मैं चला गया तो मेरा मन सदा दुःखी रहेगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का मूल्य चुका दूं। मैं तीन दिन तक आपके खेत में काम करूंगा। इससे जो मजदूरी मुझे मिलेगी, उससे नई पुस्तक खरीद कर लाऊँगा।" क्या आप मुझे खेत पर काम करने देंगे ?" सज्जन ने बालक लिंकन को बहुत समझाया परन्तु वह नहीं माना। आखिर उन्हें लिंकन की बात माननी ही पड़ी। बालक लिंकन ने तीन दिन तक उन सज्जन के खेत पर काम किया और प्राप्त हुई मजदूरी से नई पुस्तक खरीद कर दी। सज्जन ने नई पुस्तक हाथ में लेकर कहा, "एक दिन तुम जरूर बड़े आदमी बनोगे।" उन सज्जन की बात सही निकली। आगे चलकर यही बालक अमरीका का राष्ट्रपति बना।

(९)

भगवान कहाँ नहीं ?

एक विद्यालय में धर्म की कक्षा में अध्यापक पढ़ा रहे थे। अध्यापक ने शिष्यों से पूछा - "भगवान कहां है ?" एक शिष्य ने कहा - "जी, मंदिर में।" दूसरे ने कहा - "गिरजाघर में" । तीसरे ने कहा - "मस्जिद में" और चौथे ने कहा - "गुरुद्वारे में।" पांचवें शिष्य को जब कोई और पवित्र स्थान ध्यान में नहीं आया तो खड़े होकर उसने गुरुदेव से पूछा क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि भगवान कहां नहीं है ? और गुरुदेव ने इस अन्तिम शिष्य को आशीर्वाद देते हुए हृदय से लगा लिया।

(१०)

बुद्ध के आँसू

एक बार महात्मा बुद्ध एक उपवन में आम के पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। उपवन में कुछ बच्चे खेल रहे थे। खेलते-खेलते वे आम के पेड़ पर पत्थर मार कर आम तोड़ने लगे। एक पत्थर महात्मा बुद्ध के मस्तक पर आकर लगा और रक्त बह निकला। बच्चे डर गए। वे महात्मा बुद्ध

के पास आकर उनके चरण पकड़ कर क्षमा याचना करने लगे। महात्मा बुद्ध की आँखें आँसुओं से भीगी हुई थी। वे बच्चों से बोले, 'मुझे कोई कष्ट नहीं है, तुम व्यर्थ घबरा रहे हो।" बच्चे पूछ बैठे, 'अगर कोई कष्ट नहीं है तो आपकी आँखों में आँसू किसलिए हैं ?' बुद्ध विनम्रता से बोले, 'तुमने जब पेड़ को पत्थर मारा तो इसने तुम्हें मीठे फल दिए और जब मुझे पत्थर मारा तो मैं तुम्हें सिवाय भय के कुछ न दे सका, मैं इसीलिए दुःखी हूँ।'

(११)

इच्छा शक्ति बलवान है

एक बार भगवान बुद्ध से उनके प्रिय शिष्य ने पूछा 'प्रभो, क्या संसार में ऐसी भी कोई वस्तु है, जो चट्टानों से भी अधिक कठोर हो ? बुद्ध ने कहा, 'हाँ, लोहा है, जो चट्टानों से भी कठोर है। वह उन्हें तोड़ देता है।" शिष्य ने फिर पूछा, 'क्या ऐसी भी कोई वस्तु है, जो लोहे से भी कठोर और मजबूत हो ?" बुद्ध ने कहा हां, अग्नि है। वह लोहे को भी पिघला देती है।

शिष्य ने पूछा 'अग्नि से भी कठोर कौन सी वस्तु है ?' बुद्ध ने उत्तर दिया, 'पानी, जो अग्नि को भी बुझाने में समर्थ रहता है।' शिष्य की जिज्ञासा अब भी शांत नहीं हुई। उसने पूछा, पानी से भी श्रेष्ठ वस्तु बतलाइये।

बुद्ध ने कहा, 'वायु' वह जल के प्रवाह को बदल देती है। पानी बरसाने वाले मेघों को भी तितर-बितर कर देती है।'

शिष्य ने अंत में पूछा, 'प्रभो, क्या विश्व में ऐसी भी वस्तु है जो वायु से भी बलवान व श्रेष्ठ है?

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'हाँ, वह है मनुष्य की इच्छा शक्ति। इच्छा शक्ति के द्वारा मनुष्य वायु को भी अपने वश में कर सकता है। इच्छा शक्ति के बल पर मनुष्य अनेक महान कार्यों का निर्माण करता है, संसार के दुःखों से छुटकारा प्राप्त करता है, इसलिए इच्छा शक्ति ही सबसे बलवान है, श्रेष्ठ है।'

(१२)
योग के चमत्कार

योग सिद्ध गुरु मत्स्येन्द्र नाथ हिमालय की तराई के वनों में रहते थे। वह एक बार भिक्षा मांगते हुए जयश्री नगर में गए। वहां एक महिला उन्हें भिक्षा देने आई। महिला के मुख पर पातिव्रत्य का अपूर्व तेज था। पर कुछ उदास दीख रही थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने उससे उदासी का कारण पूछा तो सती ने बताया कि संतान नहीं होने के कारण संसार फीका जान पड़ता है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ दया की मूर्ति थे। उन्होंने अपनी थैली से भभूत निकाली और सती के हाथ पर रखते हुए कहा "इसे खा लेना, तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा।" इतना कह वह वहां से चले गए। इधर सती की एक पड़ोसिन महिला ने यह बात सुनी तो उसने कई तरह का डर दिखाकर उसे भभूत खाने से मना कर दिया। सती ने डर कर भभूत गहरे तालाब में फेंक दिया। इस घटना के बारहवें वर्ष मत्स्येन्द्रनाथ पुनः जयश्री नगर में आए। उन्होंने सती के घर के सामने अलख जगाया। सती के बाहर आने पर वह बोले, अब तो तेरा बेटा बारह वर्ष का हो गया होगा। देखूं तो वह कहां है। यह बात सुनते ही वह घबरा गई। उसने सब हाल कह सुनाया। मत्स्येन्द्रनाथ उसे लेकर तालाब के पास गये। और वहां अलख जगाया। गुरु का शब्द सुनते ही एक बारह वर्ष का तेजपुत्र बालक प्रकट हो गया। बालक मत्स्येन्द्रनाथ के चरणों में सिर रखकर प्रणाम करने लगा। यही बालक आगे चलकर गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ ने बालक को अपने साथ रखा और योगशास्त्र की पूरी शिक्षा दी। योग साधना और वैराग्य में वे अपने गुरु से भी आगे बढ़ गए। योग बल से उन्होंने चिरंजीवि स्थिति प्राप्त की। धर्मप्राण लोग उन्हें पशुपति नाथ का अवतार मानते हैं। गोरखनाथ के नाम पर गोरखपुर शक्तिपीठ के रूप में प्रसिद्ध है।

(१३)

तन्मयता

एक बार रसायनज्ञ प्रो० नील्स बोर, यूनिवर्सिटी कालेज ऑफ साइन्स, कलकत्ता में भाषण देने के लिए गये। प्रो० बोस भी उनका व्याख्यान सुन रहे थे, लेकिन वह आंखें बन्द किए हुए थे, मानों ऊँघ रहे हों।

अचानक एक सवाल करते-करते प्रो० नील्स अटक गए और बोले, "शायद प्रो० बोस मेरी मदद करेंगे।"

तब प्रो० बोस ने अपनी आँखें खोलीं, ब्लैक बोर्ड तक आए और गणित का वह सवाल हल करके व उसका नुक्ता समझाकर पुनः अपनी सीट पर आकर पहले की तरह आँखें बंद करके बैठ गए।

(१४)

विनम्रता

न्यूटन अत्यन्त नम्र स्वभाव के व्यक्ति थे। वह अपने समय के महान वैज्ञानिक थे, परन्तु अपनी महानता के प्रति सदा उदासीन रहते थे।

एक बार वे बहुत बीमार थे। उनकी अंतिम घड़ी निकट थी। उनके एक नजदीकी रिश्तेदार ने तसल्ली दिलाते हुए कहा, "आपके लिए यह संतोष और गर्व की बात होगी कि आपने प्रकृति के रहस्यों को उजागर करने में बड़ी दिलचस्पी ली और उन्हें निकट से जाना।"

यह सुनकर न्यूटन बोले, संसार मेरे अनुसंधान के बारे में कुछ भी कहे, लेकिन मुझे प्रतीत होता है कि मैं समुद्र तट पर खेलने वाले उस बालक के समान हूँ, जिसको कभी-कभी अपने साथियों की अपेक्षा कुछ अधिक सुन्दर पत्थर, शंख व सीप मिल जाते हैं। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि सत्य का अथाह समुद्र मेरे सामने अब भी बिन खोजा पड़ा है।

(१५)

कुपुत्र और सुपुत्र

मातहिं पितहिं उऋण भये नीके।
गुरु ऋण रहा सोच बड़ जीके।

अर्थात् इस सांर में तीन प्रकार के ऋण होते हैं। माता का ऋण, पिता का ऋण और गुरुका ऋण। जो पुत्र इन तीनों ऋणों को चुकाता है, वह सुपुत्र है। जिसकी कीर्ति की सुगन्ध दूर-दूरतक फैल सके, जिसकी विजय पताका तीनों लोकों में फहरे, ऐसा पुत्र सुपुत्र कहलाता है।

एक समय एक साधक की कड़ी तपस्या पर प्रसन्न होकर भगवान प्रकट हो गये, भगवान के पूछने पर साधक ने पुत्र की मांग की। भगवान ने पूछा कि लम्बी आयुका कुपुत्र चाहिए या कम आयु का सुपुत्र ? काफी सोचने के बाद तपस्वी ने सुपुत्र मांगा। उचित भी है, कुपुत्र होकर भी न होनेके बराबर ही होता है, जो सिर्फ माता-पिता को नहीं बल्कि पूरे समाजको अपने कुकर्मों से बिगाड़ देता है।

(१६)

गुलाब की सुगन्ध

राजा वीरव्रतको कई वर्षों बाद सन्तान की प्राप्ति हुई। उन्होंने अपने राजकुमार को बड़े लाड़-प्यार से पाला। अधिक लाड़-प्यार के कारण वह बहुत जिद्दी हो गया। उसकी जिद से राजा एवं प्रजा हैरान हो गये। उसके कड़वे बोल सुननेवालों के हृदय को चीर देते थे। उसकी हरकतों से परेशान राजा ने मन्त्रियों की सलाह से उसे आश्रममें ऋषि सुखबीर के पास भेज दिया।

एक दिन सुबह ऋषिवर राजकुमार को लेकर आश्रम के बाग में गये। उन्होंने राजकुमार को गुलाब के दो फूल एवं नीम की चार पत्तियां तोड़कर लाने को कहा। पहले उन्होंने राजकुमार को गुलाब की सुगन्ध सूंघने को कहा। उसकी मीठी सुगन्ध से राजकुमार का मन प्रसन्न हुआ और उसके मुंहपर खुशी की लहर दौड़ गयी। इसके बाद उन्होंने राजकुमारको नीम की पत्तियां खाने के लिए कहा। पत्तियां खाते ही राजकुमार का मुँह कड़वाहट

से भर गया और वह नाराज हो गया। वह बोला, 'गुरुदेव, ये पत्तियां तो बहुत ही कड़वी हैं।'

गुरूदेव बोले, 'ठीक इसी तरह से लोग कड़वे बोलों से, कड़वी जुबान से नाराज होते हैं। खुद को एवं दूसरों को सुखमय जीवन प्रदान करने के लिए गुलाब की मीठी सुगन्ध की तरह अपनी जुबान में भी मिठास भरो।'

(१७)

शुभस्य शीघ्रम्

धर्मराज युधिष्ठिर अपने सहयोगियों के साथ बहुत व्यस्त थे। उसी समय एक ब्राह्मण ने आकर याचना की। व्यस्तता के कारण धर्मराज ने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा। उनके भाई भीम भी वहां उपस्थित थे, जिन्होंने धर्मराज की बात सुनी तो उन्हें आश्चर्य हुआ। वे तुरन्त उठे और विजय दुन्दुभी बजाने लगे। सभी लोग स्तम्भित हो गये कि इस समय कोई युद्ध तो चल नहीं रहा, जिसमें विजय पाने के लिए भीम दुन्दुभी बजा रहे हैं? इस पर भीम ने कहा कि 'आज धर्मराज की काल पर विजय हुई है, वे कालजयी हुए हैं। उन्हें यह विश्वास है कि कलतक काल उनका और उस याचक का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। क्या यह काल पर विजय नहीं है?'

धर्मराज भीमसेन की धारणा को समझ गये कि कल का किसको पता है और लज्जित हो तुरन्त उस याचक को बुलवाकर सम्मान सहित दान दिया और क्षमा मांगी।

कहा गया है कि 'शुभस्य शीघ्रम्' अर्थात् शुभ काम (सत्कर्म) शीघ्र करो, इसमें देरी न करो। सत्कर्म को कलपर भी मत छोड़ो।

(१८)

अद्‌भुत उत्सर्ग

सावरकर तीन भाई थे, तीनों ही क्रांतिकारी। सबसे बड़े गणेश सावरकर को अंग्रेजों ने आजीवन कालापानी की सजा देकर अंडमान भेजा। सबसे छोटे नारायण सावरकर को लॉर्ड मिंटो पर बम फेंकने के जुर्म में ११ साल

का कारावास हुआ और कुछ ही समय बाद मंझले भाई वीर विनायक सावरकर भी दो जन्मों का कालापानी भुगतने अंडमान पहुँच गए। अंग्रेज सरकार इतने पर भी नहीं रुकी। उसने सावरकर परिवार की सारी संपत्ति कुर्क कर ली। पुलिस वाले घर में से हल्दी-नमक तक उठा कर ले गए। घर में कोई पुरुष सदस्य नहीं बचा था। पिता दामोदर सावरकर का देहांत वर्षों पहले प्लेग से हो गया था।

गणेश सावरकर की धर्मपत्नी श्रीमती यशोदा बाई, जिन्हें सब 'येसू भाभी' कहकर पुकारते थे, कुर्की की कार्यवाही पूरी हो जाने के बाद नितांत सूने और उजाड़ पड़े घर में अकेली बैठीं थीं। आस पड़ोस की कुछ महिलाएं सहानुभूति व्यक्त करने चली आईं। घर की हालत देखकर उनकी आँखों में बरबस आँसू उमड़ चले।

येसू भाभी ने शांत स्वर में कहा - 'रोती क्यों हो बाइयों ? पहले मेरे जैसे कितने ही परिवार उजड़ेंगे, तब मिलेगी भारत को आजादी।

और वे महिलाएं इस दृढ़चित्त महान स्त्री के तेजस्वी चेहरे को देखती रह गईं।

(१६)

देश-प्रेम

स्वामी विवेकानंद के आह्वान पर लाहौर के गणित शिक्षक प्रो० तीर्थराम दुनिया में वेदांत का प्रसार कर भारत का मस्तक ऊँचा करने के लिए स्वामी जी के ही समान अमेरिका गए। वहाँ वे रामतीर्थ के नाम से विख्यात हुए। स्वामी रामतीर्थ संसार-त्यागी संन्यासी थे। पर अपने मानस-गुरु स्वामी विवेकानन्द की तरह भारत उनके रोम-रोम में बसा था, वह उनकी हर धड़कन में स्पंदित था। वैभव संपन्न अमेरिका में फकीरी का जीवन बिताते रामतीर्थ अक्सर गाते रहते-

हम रूखे टुकड़े खाएंगे, भारत पर वारे जाएंगे। हम सूखे चने चबाएंगे, भारत की बात बनाएंगे। हम नंगे उमर बिताएंगे, भारत पर जान लुटाएंगे। शाम के समय वहाँ डूबते सूरज को देखकर भारत की याद में आँसू बहाते

हुए वे उसे संबोधित कर कह उठते-'तुम अब मेरी प्यारी मातृभूमि पर उदित होने जा रहे हो। मेरे इन आंसुओं को वहां के सलिल सुंदर खेतों में ओस की बूंद के रूप में रख देना।'

स्वामी विवेकानंद के ही समान स्वामी रामतीर्थ ने भी अपनी मातृभूमि के हित में काम करते हुए ही प्राण त्यागे।

(२७)

परमात्मा क्या है ?

जब गीताञ्जलि लिखी जा चुकी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबुल पुरस्कार मिल चुका और सारी दुनिया में उनकी ख्याति के समाचार फैल गये तो उनके पड़ोसी एक बूढ़े ने रवीन्द्रनाथ से पूछा, रवीन्द्र! क्या तुमने वास्तव में परमात्मा को जान लिया है ? जैसा कि गीताञ्जलि में तुमने ईश्वर की प्रशंसा में गीत गाये हैं।'

प्रश्न सुनकर रवीन्द्र चौंक गये। उन्होंने सोचा तक नहीं था कि मुझे कभी कोई ऐसा प्रश्न पूछ लेगा तो मैं उसका क्या उत्तर दूँगा ? वे कितनी ही रातें सोये नहीं और वह बूढ़ा दुबारा प्रश्न न पूछ ले, इसलिए उन्होंने उस गलीका रास्ता ही बदल दिया। किन्तु प्रश्न का उत्तर खोजे बिना रवीन्द्र को भी चैन नहीं था। नदी तट, सागर तट, वन-बीहड़ में उत्तर खोजते घूमते रहते।

वर्षा के दिन थे। आषाढ़ का महीना। तालाब, पोखर, नदी भरे-पूरे थे। प्रातः कालीन सूर्य की किरणें समुद्र पर बिखरीं। प्रतिबिम्ब उभरे, पोखर, नदी, तालाब, समुद्र में सबमें दिखाई दे रहा था। सबमें से सूरज झलकता था। किन्तु सूरज न डबरे के जल में गंदला था, न समुद्र के जल में खारा। बस रवीन्द्र को परमात्मा समझ में आ गया। वह सर्वशक्तिमान सत्ता, पापी, पुण्यात्मा, आकाश, पाताल के प्रत्येक जीव में विद्यमान है। वह न कभी अशुद्ध होती है, न समाप्त होती है। उत्तर प्राप्त करने के बाद वे बूढ़े के पास गये और कहा, 'आपकी सद्प्रेरणा से मुझे परमात्मा को समझने का मौका मिला जो गीताञ्जलि लिखते समय नहीं मिल सका था।'

(२१)
कांटों की चुभन

एक लड़का प्रतिदिन भोर में किसी बगीचे में जाता और माली से नजरें चुराकर गुलाब के प्यारे प्यारे फूल तोड़ता, फिर उन्हें अपने मित्रों में बांट दिया करता।

रोज की तरह उस दिन भी वह बगीचे में फूल तोड़ रहा था। तभी पौधे ने उससे सवाल किया - क्यों भाई! तुम जब भी मेरे पास आते हो तो मेरी टहनियों से चुन-चुनकर सुन्दर-सुन्दर फूल तोड़ लेते हो, लेकिन कांटों को वहीं छोड़ देते हो। तुम कांटों को क्यों नहीं तोड़ते ? आखिर वे भी तो मेरे ही बदन पर गुलाब की भांति स्थिर रहते हैं।'

लड़का बोला-'मैं तुम्हारे बदन से फूल तोड़ता हूँ, यह काम तो मैं बिल्कुल ठीक करता हूँ। मुझे भला कांटों से क्या मतलब! यदि मैं तुम्हारे कांटे तोडूँगा तो वे मेरे हाथों में चुभन करेंगे। उससे हाथों से खून रिसने लगेगा।

यह सुनकर गुलाब का पौधा जोर से हंसते हुए बोला - 'अरे,तुम मनुष्य योनि में होते हुए भी मूर्ख हो।'

'मूर्ख क्यों ?' लड़के ने हैरानी से पूछा। अब गुलाब ने अपनी मुस्कान के साथ गन्ध बिखेरते हुए कहा-लेकिन जब तुम किसी दोस्त के पास जाते हो तो उसकी सिर्फ बुराइयां ही देखते हो, अच्छाइयों की तरफ तुम्हारी नजर ही नहीं जाती, ऐसा क्यों ?'

यह सुनकर लड़का खामोश हो गया। वह मन में सोचने लगा-'इस पौधे ने जो सच बात बतायी है, मुझे अपने जीवन में उतारना चाहिए।' फिर लड़के ने बुराइयों की तरफ से ध्यान हटाकर अच्छाइयों की तरफ ध्यान देना शुरू कर दिया।

(२२)

एहसास

एक राजा था जो अपनी रानी को प्रजा से कहीं अधिक प्यार करता था। आलसी, कंजूस व लालची इतना कि लगान वसूल करके सदैव राजकोष को बढ़ाता रहता था। अपने राज्य के किसानों को कब किस चीज की जरूरत है, उन्हें क्या तकलीफ है, इस ओर उसका कोई ध्यान नहीं रहता था। किसानों को कोई मदद न मिलने से फसल की पैदावार भी कम होती जा रही थी। उस राज्य में एक ऐसा भी किसान था जो बहुत बुद्धिमान और होशियार था। उसने राजा को सबक सिखाना, उनका ध्यान प्रजा की ओर आकर्षित करना चाहा।

उसने राजा को सबक सिखाने के लिए अपने खेत में खाद एक ही जगह डाल दी। एक दिन राजा मंत्री के साथ राज्य के खेत देखने निकले। हरे-भरे लहराते खेत देख राजा बहुत ख़ुश हुए। आगे बढ़ने पर कुछ खेतों में छोटी-बड़ी फसल दिखाई दी और एक खेत में तो पूरा खाद एक ही जगह पड़ा था। फसल नाम की कुछ चीज नहीं थी। राजा ने तुरंत उस खेत के मालिक को बुलवाकर कर पूछा - 'तुम कितने मूर्ख हो? सारी खाद एक ही जगह डाल दी? इससे फसल कैसे अच्छी होगी ?'

वह किसान तो इसी मौके की ताक में था। वह निर्भीकता से बोला-हुजूर, जब आपके राजकोषमें जमा लाखों की रकम प्रजा के लिए उपयोगी हो रही है तो खेत में एक ही जगह पड़ी खाद भी उपयोगी क्यों न होगी ?

उस किसान की ये ज्ञान भरी बातें सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुए। उन्हें अपनी गलती महसूस हुई। उस किसान की तारीफ करते हुए बोले-आज तुमने मेरे आँख से कंजूसी व लालच की पट्टी खोल दी। आज से राजकोष का धन प्रजा की सुख-समृद्धि में अधिक से अधिक खर्च होगा। प्रजा के सुख-दुख की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

(२३)

मुक्ति का मार्ग क्या है

गुरुकुल आश्रम में शिष्यों की विदाई के अवसर पर गुरु ने पूछा कि कोई जिज्ञासा हो तो प्रश्न करो। एक शिष्य ने जिज्ञासा प्रकट की-गुरुदेव, मुक्ति का मार्ग क्या है? गुरुदेव ने सामने खड़ी एक मूर्ति को सभी शिष्यों से माला पहनाने के लिए कहा और सभी शिष्यों ने क्रम से माला पहनायी। पुनः गुरुदेव ने शिष्यों को आदेश दिया कि सभी शिष्य बारी बारी से उस मूर्ति को एक एक जूता मारो। शिष्य सहम गये लेकिन गुरु की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य समझ कर सभी शिष्यों ने क्रम से मूर्ति को जूता मारा। जब माला पहनाने और जूता मारने का क्रम समाप्त हो गया तो गुरुदेव ने शिष्यों से पूछा कि जब तुम माला पहना रहे थे तो मूर्ति में कोई प्रतिक्रिया थी ? शिष्यों ने कहा, नहीं। गुरुदेव ने पुनः पूछा जब तुम जूता मार रहे थे तो कोई प्रतिक्रिया थी, तो उत्तर मिला-नहीं। तब गुरुदेव ने कहा कि जब तुम माला के मान से और जूते के अपमान से प्रतिक्रियारहित हो जाओगे तो तुम्हारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। याने मान अपमान से अविचलित रहने वाला व्यक्ति ही मुक्ति पा सकता है।

(२४)

खटखटे बाबा

एक राजा के शयन कक्ष को नौकरानी नित्य साफ करती थी। एक दिन शयन कक्ष में पड़े मोटे गद्दे को देखकर नौकरानी के मन में यह भाव आया कि इस पर सोना अत्यन्त ही आरामदायक होता होगा। एकान्त देखकर नौकरानी गद्दे पर सो गयी और उसे नींद भी आ गयी। इतनी देर में राजा किसी कार्य से शयन कक्ष में प्रवेश करते हैं और नौकरानी को गद्दे पर सोया देख क्रोधित हो जाते हैं। क्रोध के कारण उसे हन्टर से मारना प्रारम्भ

करते हैं। पहले दो हन्टर मारे तो नौकरानी रोयी और तीसरे हन्टर के मारने पर जोर से हंसने लग गयी।

नौकरानी के हंसने पर राजा ने हन्टर से मारना बन्द किया और उससे पूछा कि पहले दो हन्टर मार के कारण तू क्यों रोयी और तीसरे मार पर तू क्यों हंसी ? नौकरानी ने बताया कि रोई मैं इसलिए कि हन्टर के मार से मुझे कष्ट हुआ और हंसी इसलिए कि थोड़ी देर सोने पर जब इतने हन्टर पड़े हैं तो नित्य सोने वाले को कितने हन्टर पड़ेंगे ? नौकरानी के इस कथन से राजा लज्जित हुए। इस प्रसंग को एक व्यक्ति ने जब सुना तो उसने अपनी गृहस्थी की वेशभूषा उतार दी, जूते उतार दिये और साधारण संन्यासी का बाना पहन कर खूंटी वाली खडाऊं पहन ली।

खड़ाऊं की खट-खट की आवाज से लोग उन्हें खटखटे बाबा कहने लग गये। वस्तुतः खटखटे बाबा में इसी प्रसंग के कारण संन्यास वृत्ति जागृत हो गयी।

(२५)
अच्छाई को उजाड़ोगे नहीं तो फैलेगी कैसे

गुरुनानक देव जी अपने शिष्यों के साथ भ्रमण में निकले और एक गांव में डेरा डाला। उस गांव के लोग आलसी थे। अतः महाराजश्री ने आशीर्वाद दिया कि उनको ठीक से यहीं बसा के रखो। पुनः आगे बढ़े और दूसरे गाँव में डेरा डाला तो उन्होंने देखा कि उस गांव के लोग अत्यन्त पुरुषार्थी थे। महाराजश्री ने आशीर्वाद दिया कि इनलोगों को यहाँ से उजाड़ो। महाराजश्री के इस आदेश के अर्थ को साथ वाले नहीं समझ पाये कि पहले गांव में आलसी लोगों को कहा कि ठीक से बसा के रखो और दूसरे गांव के पुरुषार्थी लोगों को कहा कि उजाड़ो। तो महाराजश्री ने बताया कि अच्छाई को उजाड़ोगे नहीं तो अच्छाई फैलेगी कैसे?

(२७)

कौन सा दुर्गुण सबसे बड़ा

एक महात्मा के पास एक सज्जन गये। उन्होंने प्रश्न किया महाराज काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर आदि दुर्गुणों में कौन सा दुर्गुण सबसे बड़ा है। तो महाराजश्री ने उत्तर दिया कि नाव में छेद छोटा हो या बड़ा-डुबाने के लिए काफी है। यह जानकर क्या करोगे कि कौन सा दुर्गुण सबसे बड़ा है।

(२८)

वेद भगवान प्रकट हो गये

काशी में सर्ववेद शाखा सम्मेलन था। दक्षिण से यजुर्वेद की परम्परा के अति विशिष्ट विद्वान काशी पधार रहे थे और उनको यजुर्वेद के कुछ मंत्रों का अर्थ नहीं लग रहा था। उन मंत्रों के अर्थ जानने हेतु दक्षिण के सबसे बड़े सन्त महर्षि रमण के पास वे विद्वान गये और उन्होंने उन यजुर्वेद के मंत्रों का अर्थ पूछा। महर्षि रमण ने बताया कि वे तो वेदों के विद्वान नहीं हैं। अतः प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हैं। विद्वानों ने पुनः महर्षि रमण को नमन किया और प्रार्थना किया कि आप सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान हैं। अतः आपके लिए कोई कार्य असम्भव नहीं। कहते हैं महर्षि रमण ने ध्यान लगाया। उनकी वाणी में वेद भगवान प्रकट हो गये और यजुर्वेद के उन मंत्रों का उच्चारण कर वेद भगवान ने उनका अर्थ बता दिया। इसके बाद वेद भगवान लुप्त हो गये। सारे विद्वानों ने महर्षि रमण के चरणों में दंडवत किया और उनकी धन्यता के लिए मंगल वचन कहे। यह सही है कि सच्चा सन्त सर्वसमर्थ होता है और वह जब प्रकृति की चेतना से अपनी चेतना को मिला लेता है तो उसके लिए कोई कार्य असम्भव नहीं रहता।

(२८)

जल-परीक्षा

कहते हैं आसाम के आदिवासी इलाकों में ईसाई लोग हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन करा रहे थे। धर्म-परिवर्तन के लिए वे दो मूर्तियां रखते थे। हिन्दुओं के भगवान की मूर्ति लोहे की तथा ईसाइयों के क्राइस्ट की मूर्ति लकड़ी की। दोनों मूर्तियों को जल में डाल देते थे। क्राइस्ट की मूर्ति लकड़ी की होने के कारण तैरती थी और हिन्दुओं के.भगवान की मूर्ति लोहे की होने के कारण डूब जाती थी। ईसाई प्रचारक आदिवासी हिन्दुओं को इस प्रक्रिया से यह समझाते कि जिसके देवता स्वयं डूब जाते हैं वे दूसरों का तारण कैसे कर सकते हैं? बहुत हिन्दू जब ईसाई बन चुके और एक सन्त को पता लगा तो वे उस क्षेत्र में पहुँचे और उन्होंने सुना कि जल परीक्षण से हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा रहा है। महात्मा ने बताया कि हिन्दू धर्मशास्त्रों में जल परीक्षण की व्यवस्था नहीं है, बल्कि अग्नि-परीक्षा का विधान है। दोनों देवताओं को अग्नि में डाल दो। जिसका देवता अग्नि में भी जीवित रह जाएगा, वही दूसरों को भी जीवन दान दे सकता है। जो स्वयं जल जाएगा वह दूसरे को कैसे बचा सकता है? इस युक्ति से सारे परिवर्तित ईसाई हिन्दू हो गये और महात्मा की जय-जयकार करने लग गये।

(२९)

रूप देखना चाहता है तो मेरा रूप देख

माँ आनन्दमयी की हीरक जयन्ती का कार्यक्रम वाराणसी में आयोजित था। सत्संग में महिलाओं और पुरुषों को अलग-अलग बैठने की व्यवस्था थी। पुरुषों में बैठा एक मनचला युवक लड़कियों एवं जवान महिलाओं की तरफ देखा करता था और गलत इशारे किया करता था। आयोजक ने उसे इस पवित्र स्थान में इस तरह गन्दे आचरण करने के लिए मना किया। सत्संग का कार्यक्रम कई दिन चला। दूसरे दिन सत्संग में पुनः उस युवक ने अपनी हरकतें चालू कर दीं तो आयोजकों ने कुछ बिगड़ कर उसको ऐसा न करने के लिए समझाया। तीसरे दिन पुनः जब उसकी हरकतें चालू हुईं तो आयोजक

उसे पकड़ कर पूज्य माँ के पास ले गये और पूज्य माँ को उसकी सारी हरकतों से अवगत कराया। पूज्य मां ने उस नवयुवक से पूछा-"बच्चा, तू रूप देखना चाहता है तो मेरा रूप देख" और उस नवयुवक व मां के नेत्र आमने-सामने मिल गये। नवयुवक सर झुका लेता है और चौथे दिन जब कथा में आता है तो अपनी आंखों के बगल में एक कपड़ा लगा लेता है ताकि दाहिने बाएं न देख सके और वह एकाग्रचित्त होकर केवल मां की तरफ देखता है। सत्संग की समाप्ति पर उसमें इतनी विरक्ति पैदा हो जाती है कि वह संन्यास ले लेता है। यह है महान आत्माओं के नेत्रों का प्रभाव।

(३०)

दो साधु

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानंद से कहा था-"क्या यह उचित है कि लोग अज्ञानतम में डूब जायँ, रोते चिल्लाते फिरें, और तुम हिमालय की गुफा में समाधि का आनंद लूटते बैठो ? कभी नहीं। इन्हें कौन उबारेगा ? कौन इन्हें कीचड़ से बाहर निकालेगा? कौन इन्हें सही मार्ग दिखायेगा? यह सब तुम्हीं को करना होगा।"

(३१)

परिश्रम

एक बार की बात है एक व्यक्ति, जिसको कहीं भी नौकरी नहीं मिल रही थी, बहुत उदास था। एक दिन वह एक महात्मा के पास गया और बोला-महात्मन्, मुझे रोजगार अथवा धन कमाने का कोई उपाय बता दें'

महात्मा ने कहा-'यदि तुम मुझे अपने हाथ, आँखें या पैर दे दो तो मैं तुम्हें बहुत सा धन दे सकता हूँ।' उस बेरोजगार युवक ने कुछ भी देने से इन्कार कर दिया। इस पर महात्मा ने कहा-"तुम्हारे पास भगवान द्वारा दी गयी सभी वस्तुए मौजूद हैं। तुम छोटे-बड़े कार्य की भावना त्याग कर जो भी काम मिले, उसे मेहनत से करो। युवक ने महात्मा के वचनों का अनुसरण किया। शीघ्र ही वह एक अमीर व्यक्ति बन गया।

□□□
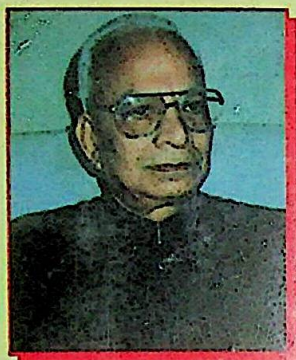
दीनानाथ झुनझुनवाला

जन्म दि० २२ जनवरी सन् १९३४ ई० को भागलपुर (बिहार) में। प्रारंभिक शिक्षा भागलपुर तथा माध्यमिक वाराणसी के हरिश्चन्द्र इंटरमीडिएट कालेज में। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से औद्योगिक रसायनशास्त्र के साथ विज्ञानस्नातक की उपाधि के अनन्तर उद्योगक्षेत्र में पदार्पण, झुनझुनवाला आयल मिल्स, झुनझुनवाला वनस्पति लि०, झुनझुनवाला रिफाइनरीज, झुनझुनवाला फाइर मिल्स तथा झुनझुनवाला गैसेज़ प्रा०लि० आदि प्रतिष्ठानों की स्थापना। साथ-साथ निरंतर समाजसेवा में संलग्न रहते हुए काशी गोशाला, हिन्दू सेवा सदन, श्री राम लक्ष्मी नारायण मारवाड़ी अस्पताल, आर्य महिला इंटर कालेज, काशी व्यायामशाला, रोटरी क्लब, जूनियर चेम्बर तथा अन्यान्य दर्जनों संस्थानों के पदाधिकारी अथवा प्रभावशाली सदस्य के रूप में उल्लेखनीय कार्य। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, और औद्योगिक क्षेत्रों में विशिष्ट उपलब्धियों के लिए रोटरी क्लब, जूनियर चेम्बर, सोसाइटी ऑव केमिकल इंजीनियरिंग (बी०एच०यू०) कौंसिल ऑव मैनेजमेंट एक्जीक्यूटिव्स, मुम्बई तथा अन्यान्य संस्थानों द्वारा समय-समय पर सम्मान एवं अलंकरण। पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः लेखन। स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालय, आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा विभिन्न संस्थाओं में समय-समय पर भाषण। सर्वजनहिताय प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक इस क्षेत्र में प्रथम प्रयास।